बालसखा पुस्तकमाला—पुस्तक आठवीं

बालगीता

बालक-बालिकाओं के पढ़ने के लिए
पूरी गीता का सरल हिन्दी-
भाषा में सार
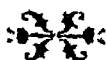
लेखक
पण्डित रामजीलाल शर्म्मा
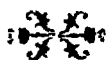
प्रकाशक
इंडियन प्रेस, लिमिटेड, इलाहाबाद

१९२४

 [मूल्य ।।।)

बालगीता

" गीता सुगीता कर्त्तव्या किमन्यैर्ग्रन्थविस्तरैः । "

विषय-सूची

भूमिका

अब तक 'बालसखा पुस्तकमाला' की सात पुस्तकें निकल चुकीं। यह आठवीं है। हमें यह देख कर बड़ा आनन्द होता है, कि हिन्दी के प्रेमी हमारी इस 'माला' की पुस्तकों को बड़े चाव के साथ पढ़ते हैं। इनकी ज़्यादा बिक्री से अनुमान होता है कि हिन्दी के प्रेमी इन पुस्तकों को पसन्द करते हैं।

कितने ही मित्रों ने हमें लिखा है कि इसी तरह की एक 'बालगीता' भी बनाइए; तदनुसार यह 'बालगीता' बन कर तैयार है।

यद्यपि गीता की बातें बड़ी बारीक हैं, बड़ी कठिन हैं, पर तो भी साधारण पढ़े-लिखों के समझने के लिए, हमने उन बातों को भरसक बहुत आसान कर दिया है। जहाँ तक बना, हमने इसकी कठिनता को दूर करने की ख़ूब कोशिश की।

'गीता' की बातें आसान करने के सिवा, हमने इसकी भाषा भी बहुत सीधी रक्खी है। आशा है, मामूली हिन्दी जाननेवालों को भी, गीता की गूढ़ बातों के समझने में, इस 'बालगीता' से बड़ी मदद मिलेगी। मदद क्या, हमारा तो ख़याल है, कि इसके पढ़ने से गीता की प्रायः सभी बातें अच्छी तरह समझ में आ जायँगी।

यदि और पुस्तकों की तरह यह पुस्तक भी हिन्दी-प्रेमियों को रुचिकर मालूम हुई—हमें आशा है कि ज़रूर होगी—तो हम अपना परिश्रम सफल समझेंगे।

इलाहाबाद,
२५ । १ । ०८

रामजीलाल शर्म्मा

बालगीता

गीता का परिचय

कोई पाँच हज़ार बरस हुए जब हमारे भारतवर्ष में चन्द्रवंशी राजा राज्य करते थे। उन राजाओं का पूरा पूरा हाल 'महाभारत' ग्रन्थ में लिखा हुआ है। महाभारत बहुत बड़ा ग्रन्थ है। इसमें कोई एक लाख से भी ज़्याद: श्लोक हैं। यह अठारह हिस्सों में बँटा हुआ है। हैं तो महाभारत में और भी सैकड़ों कथायें परन्तु कौरव-पाण्डवों की कथा इसमें बड़े विस्तार से लिखी गई है। या यह समझना चाहिए की कौरव-पाण्डवों की कथा के ही लिए महाभारत बनाया गया है। बात है भी यही ठीक; क्योंकि कौरव-पाण्डवों की कथा जैसे विस्तार से इसमें लिखी गई है वैसी और कोई नहीं लिखी गई। इसे कृष्णद्वैपायन मुनि व्यासजी ने बनाया है।

यह गीता भी उसी महाभारत में है। यह अठारह अध्यायों में लिखी हुई है। यह महाभारत के भीष्मपर्व में है। इसमें कुल सात सौ श्लोक हैं।

इसमें श्रीकृष्ण और अर्जुन की बातचीत है। बातचीत क्या,

अध्यात्मविद्या का एक उत्तम सार है। यही क्यों, इसे लोक-व्यवहार का भी नमूना कहना चाहिए। गीता की बातें बड़ी गहरी हैं। उनका समझना हर एक का काम नहीं।

इसके बनाये जाने के समय का बिलकुल ठीक ठीक तो पता नहीं चलता, पर इतना ज़रूर कह सकते हैं कि महाभारती युद्ध के बाद ही कभी इसकी रचना हुई है।

इस भारतवर्ष की उत्तर दिशा में 'हस्तिनापुर' नाम का एक बहुत बड़ा नगर था। ऐसा बड़ा नगर था कि जिसे चन्द्रवंशी राजाओं ने अपनी राजधानी बना रक्खा था। मेरठ से कोई २० मील उत्तर-पूर्व के कोने में अब भी एक क़स्बा इसी नाम से मशहूर है। पहले इस नगर के उत्तर की ओर, पास ही, गंगा नदी बहा करती थी, पर, अब, इससे कुछ फ़ासला हो गया है। इस समय हस्तिनापुर में जैनियों की अधिक बस्ती है। पर अब वह बात कहाँ जो पहले थी। अब तो यह एक मामूली क़स्बे के रूप में रह गया है। इसमें शक नहीं कि इसको देखने से, या इसका नाम ही याद आ जाने से, चन्द्रवंशी राजाओं की बात याद आ जाती है।

चन्द्रवंशी राजाओं में दो भाई बड़े मशहूर हुए—धृतराष्ट्र और पाण्डु। धृतराष्ट्र के दुर्योधन आदि सौ पुत्र हुए और पाण्डु के पाँच—युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव। इनके कुल में कुरु नाम का एक बड़ा प्रसिद्ध राजा हो गया है। इसी लिए ये लोग 'कौरव' कहलाये। पर पाण्डु के पाँचों बेटे 'पाण्डव' कहलाये और धृतराष्ट्र के पुत्र 'कौरव'। बात सब एक ही थी, पर इन्हीं दो नामों से ये विख्यात हुए।

पाण्डवों की विद्या, बुद्धि, बल और पौरुष को देख कर कौरव इनसे द्वेष रखने लगे।

कौरवों ने पाण्डवों को जुए में छल से जीत लिया। पाण्डवों को बारह बरस का वनवास और एक बरस का अज्ञात-वास* मिला। पाण्डवों ने यह सब कुछ झेला। वनवास और गुप्तवास से लौटने पर उन्होंने कौरवों से अपना हिस्सा माँगा। राज्य का लोभ बड़ा भारी होता है। कौरवों ने लोभ में आकर पाण्डवों को कोरा जवाब दे दिया। पाण्डवों ने उन्हें बहुत समझाया-बुझाया, पर राजलक्ष्मी के लोभ से कौरवों ने कहा कि सुई की नोक जितनी भूमि में आती है उतनी भूमि भी तुमको हम नहीं देंगे। तुमको अपना हिस्सा लेना हो तो युद्ध के लिए तैयार हो जाओ।

इस तरह सूखा जवाब पाकर पाण्डवों को बड़ा दुःख हुआ और क्रोध भी हुआ। जब समझाने से राज्य मिलता न देखा तब युद्ध के सिवा और उपाय ही क्या था। पाण्डवों ने अपना हिस्सा लेने के लिए लड़ाई की तैयारी की। दोनों ओर की सेनायें लड़ाई के लिए कुरुक्षेत्र के मैदान में जा डटीं। मोर्चेबन्दी हुई; लड़ाई का बिगुल बजा—शंखनाद हुआ।

जब युधिष्ठिर का छोटा भाई अर्जुन युद्ध के लिए सेना के बीच में गया तब वहाँ अपने गुरु, मित्र और भाई-बन्धुओं को लड़ने के लिए तैयार देख कर बड़ा दुखी हुआ। स्वजनों को सामने देखकर अर्जुन ने कहा कि भीख माँग कर जीना अच्छा, पर इन सबको मार

* कौरव-पाण्डवों की पूरी कथा देखनी हो तो इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग, से मँगाकर 'बालभारत' नामक पुस्तक देखिए।

कर रुधिर से सने हुए राज्य का भोगना अच्छा नहीं । यह सोच कर अर्जुन बिलकुल उदास हो कर बैठ रहा । उस समय श्रीकृष्ण महाराज अर्जुन के रथ हाँकने का काम कर रहे थे । उन्होंने अर्जुन को व्याकुल और दीन देखकर ज्ञान का उपदेश किया । उसी समय के उपदेश को लेकर व्यासजी ने इस गीता की रचना की है ।

यह शास्त्र बड़ा कठिन है फिर भी, हम, इसमें से कुछ सीधी बातों का सारांश लिखते हैं ।

पहला अध्याय

जिस समय दोनों ओर की सेनाएँ तैयार हो गईं उस समय दुर्योधन ने पाण्डवों की सेना को देखा और देखकर अपने गुरु द्रोणाचार्य से जाकर कहने लगा कि गुरुजी, देखिए आपके चतुर शिष्य धृष्टद्युम्न ने पाण्डवों की कैसी मोर्चेबन्दी की है। इसमें भीम और अर्जुन के बराबर बली धनुषधारी सात्यकि, विराट, महारथी*द्रुपद, धृष्टकेतु, चेकितान, महाबली काशिराज, कुन्ती का पिता कुन्तिभोज, शैब्य, युधामन्यु, पाञ्चाल देश का राजा उत्तमौजा, सुभद्रा का पुत्र महाबली अभिमन्यु और द्रौपदी के पुत्र ये सब महारथी युद्ध के लिए कमर कसे तैयार खड़े हैं। मैं इन सबको देख आया हूँ। अब अपनी सेना के शूरवीर नायकों को भी सुनिए।

इन सब में पहले तो आपही हैं। फिर भीष्मपितामह, कर्ण, युद्ध में सदा विजय पानेवाले कृपाचार्य्य, आपका पुत्र अश्वत्थामा, विकर्ण और सोमदत्त का पुत्र भूरिश्रवा ये महाबली योद्धा हैं। इनके सिवा और भी कितने ही शूरवीर, मेरे लिए अपने प्राणों की ममता को छोड़ कर, शस्त्र लिये तैयार खड़े हैं। ये मेरे सब शूरवीर लड़ने में बड़े चतुर हैं। हमारी ग्यारह अक्षौहिणी सेना

---

*दस हज़ार शूरवीरों के साथ अकेले लड़नेवाले को 'महारथी' कहते हैं।

की भीष्मजी अच्छी तरह से रक्षा कर रहे हैं और उधर, पाण्डवों की सात ही अक्षौहिणी सेना है। तो भी उस दल की रक्षा करने में भीमसेन बड़ी मुस्तैदी से डटा हुआ है। जो हो, पाण्डवों की सेना हमारी सेना से कम ही है। अब, आप सब लोग सब मोर्चों पर तैनात होकर भीष्मजी की रक्षा करें।

इतने ही में बड़े प्रतापी भीष्मजी ने, दुर्योधन के आनन्द और हर्ष को बढ़ाने के लिए, बड़े ज़ोर से सिंह की तरह गर्ज कर, शंख बजाया। इनके शंख बजाते ही सारी सेना में धूम मच गई। सब लोग अपने-अपने शंख आदि बाजे बजाने लगे। उस समय उनके बाजों की आवाज़ों से सारा आकाश गूँज उठा।

इधर युद्ध की तैयारी देखकर, सफ़ेद घोड़ों के रथ में बैठे हुए, अर्जुन और श्रीकृष्ण ने भी अपने-अपने शंख बजाये। श्रीकृष्ण के शंख का नाम पाञ्चजन्य* था और अर्जुन के शंख का नाम देवदत्त। फिर, भीमसेन ने भी अपने पौण्ड्र नाम के बड़े भारी शंख को बजाया। युधिष्ठिर ने अनन्त-विजय नामक शंख बजाया और नकुल ने सुघोष तथा सहदेव ने मणिपुष्पक नाम शंख बजाये। धनुषधारी काशिराज, महारथी शिखण्डी, द्रौपदी का भाई धृष्टद्युम्न, विराट और सदा जय पानेवाला सात्यकि, द्रुपद, द्रौपदी के पुत्र और सुभद्रा के पुत्र महाबली अभिमन्यु, इन सबने अपने-अपने शंख बजाये।

---

* एक समय श्रीकृष्णचन्द्रजी ने समुद्र में एक दैत्य को मारा था तब उसके पेट में से यह शंख निकला था। उस दैत्य का नाम पञ्चजन था। इसलिए उन्होंने अपने शंख का नाम पाञ्चजन्य रख लिया था।

उन शंखों के बजने से सारा आकाश गूँज उठा। पाण्डवों ने ऐसे ज़ोर से शंख बजाये जिनके भीमनाद को सुनकर कौरवों की छाती दहल गई।

कौरवों को लड़ाई के लिए तैयार खड़े देखकर अर्जुन ने भी अपने अस्त्र-शस्त्र सँभाले। सब ठीक-ठाक हो जाने पर उसने श्रीकृष्ण से कहा कि तुम मेरा रथ दोनों सेनाओं के बीच में ले चलो। मैं वहाँ चलकर देखूँ तो कि कौन योद्धा मुझसे लड़ाई करने लायक़ है; किसके साथ में युद्ध करूँ। मैं चलकर देख तो लूँ कि दुर्बुद्धि दुर्योधन की ओर से कौन-कौन शूरवीर लड़ाई के लिए आये हैं।

यह सुन, श्रीकृष्णचन्द्र ने अर्जुन का रथ दोनों सेनाओं के बीच में वहाँ जा खड़ा किया जहाँ भीष्मजी और द्रोणाचार्य्य आदि शूरवीर युद्ध के लिए तैयार खड़े थे।

दोनों सेनाओं के बीच में पहुँचकर अर्जुन ने अपने चाचा, दादा, गुरु, मामा, भाई, भतीजे, पोते, मित्र, ससुर और साथी आदि को वहाँ खड़े देखा। अपने भाईबन्दों को खड़ा देखकर दया से अर्जुन का जी भर गया। वह बड़ा दुखी होकर कहने लगा कि हे कृष्ण; युद्ध में आये हुए इन भाईबन्दों को देखकर मेरे सब अङ्ग गिरे से पड़ते हैं, मुख सूखा जाता है; सारा शरीर काँपता है और रोमाञ्च हो रहा है। मेरे हाथ से मेरा गाण्डीव धनुष छूटा पड़ता है। मेरे सारे शरीर में जलन सी हो रही है। मैं यहाँ खड़े होने को भी समर्थ नहीं। मेरा मन चलायमान हो रहा है। हे कृष्ण, मुझे इस समय बुरे-बुरे शकुन दिखाई दे रहे हैं। इस युद्ध

में मैं अपने भाईबन्दों को मारकर कुछ फल नहीं देखता । इनको मारकर मुझे जीत की, राज्य की, और सुख की कुछ पर्वा नहीं । अब मुझे राज्य, भोग और जीवन लेकर क्या करना है ? जिन भाईबन्दों के लिए राज्य, भोग और सुख की कामना की जाती है वे तो सब अपने-अपने जीवन की आशा को छोड़कर यहाँ लड़ाई में खड़े हैं ।

हे कृष्ण ! गुरु, पिता, पुत्र, पितामह, मामा, ससुर, पौत्र, साले और नातेदार—जो यहाँ मौजूद हैं—यदि ये सब लोग राज्य के लोभ से मुझे मारें तो भी अब मैं इनको नहीं मारना चाहता । यह भूमि का राज्य तो क्या चीज़, मैं त्रिलोकी के राज्य के लिए भी इनको नहीं मार सकता ।

हे कृष्ण ! धृतराष्ट्र के पुत्रों को मार कर मेरा क्या भला होगा ? यद्यपि ये दुष्ट हैं तो भी इनके मारने का पाप मुझे ज़रूर लगेगा । इसलिए मैं इन्हें मारना नहीं चाहता । भला आप ही सोचिए, इनको मारने से हमें क्या सुख होगा ?

हे कृष्ण ! यद्यपि लोभ से इनकी बुद्धि बिगड़ गई है; इनको अपने कुल के और भाईबन्दों के नाश करने के पाप का कुछ विचार नहीं रहा, तो भी हमको—जब हम इन सब बातों को जानते हैं तब—इस घोर पातक से ज़रूर बचना चाहिए । जान-बूझ कर हमको ऐसा भारी पाप नहीं करना चाहिए ।

हे कृष्ण ! कुल का नाश हो जाने से कुल के धर्मों का भी नाश हो जाता है । धर्म का नाश हो जाने पर अधर्म बढ़ जाता है और अधर्म बढ़ जाने पर कुल की स्त्रियाँ बिगड़ जाती हैं । इनके

बिगड़ जाने से वर्णसंकर* हो जाता है। यह वर्णसंकर बड़ा भारी पाप है। यह कुल के नाश करनेवाले को और बचे खुचे कुल को नरक में डालता है। फिर वर्णसंकर संतान, जातिधर्मों और कुलधर्मों का सत्यानाश कर डालती है। कुलधर्म के नाश होने पर नरक मिलता है।

हा ! कैसे खेद की बात है कि राज्य के लोभ में आकर हम ऐसा घोर पाप करने पर उतारू हो गए ! हा ! हम इतना बड़ा भारी पाप करने के लिए तैयार हो रहे हैं !

यदि चुपचाप और शस्त्रहीन बैठे हुए मुझको दुर्योधन आदि मार डालें तो मेरा बड़ा हित हो। मतलब यह कि यदि दुर्योधन आदि मुझे ऐसी दशा में भी मारने लगें तो भी मैं उन पर हाथ न उठाऊँगा।

दोनों सेनाओं के बीच में खड़े हुए अर्जुन ने इस तरह कह-कर अपने धनुष-बाण हाथों से अलग रख दिये और आप रथ में पीछे की ओर, तकिये के सहारे, सरककर बैठ गये। उस समय शोक से अर्जुन का जी उदास हो रहा था।

---

* जब स्त्रियाँ बिगड़ जाती हैं और जात-पाँत का कुछ विचार नहीं करतीं तब, उनके कुकर्म से, जो संतान होती है वह वर्णसंकर कहलाती है।

दूसरा अध्याय

श्रीकृष्ण का अर्जुन को ज्ञानोपदेश

इस तरह उदास और आँखों में आँसू भरे हुए अर्जुन को देखकर श्रीकृष्ण बोले—हे अर्जुन, यह बे-मौके अज्ञान तुमको कहाँ से आ गया? यह तुम्हारी बे-समझी अपयश देनेवाली और नरकवास करानेवाली है। यह बे-समझी नीच जनों के लायक़ है, तुम्हारे लायक़ नहीं।

हे पृथा (कुन्ती) के पुत्र—पार्थ, तू कायर मत बन। क्योंकि तुझसे वीर को ऐसा कायरपन शोभा नहीं देता। हे शत्रुओं को संताप देनेवाले वीर, इस दिल की कमज़ोरी को, इस डरपोकपन को छोड़ कर तू युद्ध करने के लिए उठ।

यह सुनकर अर्जुन ने कहा—हे मधुसूदन, हे शत्रुओं के मारनेवाले, ये भीष्मपितामह और द्रोणाचार्य तो पूजा करने योग्य हैं। भला इन पूजनीय गुरुजनों के साथ मैं बाणों से कैसे युद्ध करूँ?

महात्मा द्रोण और पूजनीय भीष्मजी आदि गुरुजनों को न मारकर संसार में भीख माँग कर जीना अच्छा है। कौरवों की सहायता करनेवाले गुरुजनों को मार कर रुधिर से सने हुए राज्य को मैं कैसे भोगूँ?

हम इन—कौरवों—को जीतें या ये हमको जीतें, इन दोनों बातों में कौन ठीक है, यह हमारी समझ में नहीं आता। जिनको मारकर हम जीने की इच्छा भी नहीं करते, सो ये धृतराष्ट्र के पुत्र—दुर्योधन आदि—हमारे सामने खड़े हैं।

हे कृष्ण, इस समय मेरा मन बड़ा चलायमान हो रहा है। इस समय मेरा क्षत्रिय-स्वभाव नष्ट हो गया है। इस समय मुझको क्या करना चाहिए, सो मैं नहीं जानता। इसलिए मुझे बड़ा भारी संदेह हो रहा है कि अब मैं क्या करूँ। सो मैं आपसे पूछता हूँ। जिसमें मेरी भलाई हो, सो मुझसे कहिए। मैं आपका शिष्य हूँ। मैं आपकी शरण आया हूँ। आप कृपा कर मुझे शिक्षा दीजिए।

हे महात्मन्, पृथ्वी के निष्कंटक राज्य को और स्वर्ग के भी राज्य को पाकर मैं ऐसी कोई चीज़ नहीं देखता जो मेरे शोक को दूर कर सके। मैं फिर भी यही कहता हूँ कि "हे शत्रुओं को संताप देनेवाले, मैं युद्ध नहीं करूँगा।"

पाठक, देखी आपने अर्जुन की जितेन्द्रियता। सच्चा वीर, सच्चा महात्मा और सच्चा जितेन्द्रिय ऐसा होता है। जो काम अर्जुन ने इस समय किया, वह और किसी से नहीं हो सकता था। बात यह थी कि वह पूरा जितेन्द्रिय था। उसने अपना मन और अपनी सब इन्द्रियाँ जीत रक्खी थीं। यही नहीं, बल्कि उस वीर ने क्रोध को भी जीत रक्खा था। शत्रुओं की सेना के सामने युद्ध के लिए तैयार होकर जाना और क्रोध में भरकर लड़ाई का बिगुल (शंखनाद) बजाना, हाथ में धनुष-बाण लेकर ऐसे वीर की तलाश करना कि जिसको मारकर वह अपनी वीरता और अपने क्रोध

को दिखावे—ये सब काम इस बात को बतला रहे हैं कि उस समय अर्जुन वीर-रस में डूब रहा था और उस समय उसका क्रोध शत्रुओं को भस्म करने के लिए तैयार ही था। पर, इतनी तैयारी होने पर भी, यह सब कुछ होने पर भी, अपने गुरुजनों और भाईबंदों को देखते ही उस वीर का सारा क्रोध हवा हो गया। वह अपने भाइयों के वैर को बिलकुल भूल गया! उसका वीर-रस एकदम करुण-रस में बदल गया यह क्या थोड़े महत्व की बात है? ऐसे समय में दया का पैदा हो जाना—क्रोध की जगह करुणा का उदय हो जाना—बड़े भारी महत्व ही की बात नहीं, बल्कि आश्चर्य की भी बात है। इसी लिए हम कहते हैं कि अर्जुन ने क्रोध को अपने वश में कर रक्खा था।

पर, अर्जुन का यह काम श्रीकृष्णचन्द्र को अच्छा न लगा। क्योंकि वे चाहते थे कि दूसरे का हक़ दबा लेनेवाले पापी कौरवों को ज़रूर दण्ड मिलना चाहिए। इसलिए, श्रीकृष्णचन्द्र ने अर्जुन को ऐसा उपदेश करना शुरू किया कि जिससे उसका भाव बदल जाय। और उस समय श्रीकृष्ण के प्रभावशाली वचन काम भी कर गये। उनके वचनों से अर्जुन की सारी दीनता छूमन्तर हो गई। फिर उस वीर-हृदय में वीर-रस भर आया।

श्रीकृष्ण के उपदेश का सार इस तरह है:—

श्रीकृष्ण ने कहा—हे अर्जुन, जिनका शोक नहीं करना चाहिए, तू उनका शोक कर रहा है और इस समय उसके विरुद्ध ज्ञान की बातें बना रहा है। परन्तु ज्ञानी लोग मरे हुए और जीते हुए किसी का भी शोक नहीं किया करते।

हे अर्जुन, इस जन्म के पहले क्या मैं नहीं था? और, क्या तू नहीं था? अथवा ये सब राजा लोग पहले नहीं थे? या हम, तुम आगे न होंगे? नहीं, हम सब पहले भी थे और आगे भी होंगे। सदा से ऐसा ही होता आया है और आगे होता रहेगा। अर्थात् पैदा होना और मरना और फिर पैदा होना और मरना यह चक्र बराबर जारी रहता है।

हे अर्जुन, जिस तरह इस आत्मा का बालपन, जवानी और बुढ़ापा होता है, इसी तरह एक देह से दूसरे देह का पाना है। इसमें ज्ञानी लोग मोह को नहीं प्राप्त हुआ करते। ज्ञानी लोग जीने-मरने को कोई बात नहीं समझते।

हे कुन्ती के पुत्र, अर्जुन! जाड़ा, गरमी, सुख और दुख देनेवाली जितनी बातें हैं वे सब इन्द्रियों को ही सुख या दुख पहुँचाती हैं। और वे सुख और दुख सदा नहीं रहते; आते और चले जाते हैं। हे भारत, तुम उनको सहो।

हे पुरुषों में उत्तम, जिस ज्ञानी पुरुष को ये बातें कुछ तकलीफ़ नहीं पहुँचातीं वह सुख और दुख को समान समझा करता है। ऐसा ज्ञानी ही महात्मा है और वही मोक्ष का अधिकारी है।

तत्वज्ञानी महात्माओं ने खूब विचारकर निश्चय किया है कि जो चीज़ नहीं है वह हो नहीं सकती और जो है उसका नाश नहीं हो सकता।

हे अर्जुन, सदा रहनेवाला तो एक ईश्वर ही है जो सारे संसार में व्याप्त हो रहा है। उसका नाश कभी नहीं होता। वह अविनाशी है। उसका कोई नाश नहीं कर सकता।

हे भारत, जीवात्मा भी सदा रहनेवाला और अप्रमेय अर्थात् बे-मिसाल है। परन्तु यह शरीर, जिसमें वह रहता है, विनाशी है अर्थात् नष्ट होता रहता है। इसलिए तू युद्ध कर।

यह जीवात्मा न तो किसी को मारता है, न मारा जाता है। और, जो लोग जीवात्मा को मारनेवाला और मारा जानेवाला समझते हैं वे ठीक नहीं।

यह जीवात्मा न तो कभी मरता है और न कभी जन्म लेता है। यह तो अजन्मा है, सदा रहनेवाला है, और हमेशा बना रहता है। इसलिए देह के मार डालने से वह (जीवात्मा) मारा नहीं जाता।

हे अर्जुन, जो मनुष्य इस जीवात्मा को अविनाशी, नित्य, अनादि और विकाररहित जानता है वह किसको मारता है, और किसको मरवाता है? किसी को नहीं।

जिस तरह लोग पुराने कपड़ों को छोड़ कर नये कपड़े पहन लेते हैं, इसी तरह यह जीव भी एक शरीर को त्याग कर दूसरे शरीर को प्राप्त हो जाता है।

इस देही—जीवात्मा—को कोई शस्त्र नहीं काट सकते; आग भी इसे नहीं जला सकती; पानी भी इसे भिगो नहीं सकता और हवा इसे सुखा नहीं सकती।

यह आत्मा न काटा जा सकता है, न जलाया जा सकता है, न भिगोया जा सकता है, और न सुखाया जा सकता है। यह तो नित्य है, अविनाशी है, स्थिर है, और सनातन अर्थात् अनादि है।

यह आत्मा प्रकट नहीं है अर्थात् इसे आँखें नहीं देख सकतीं।

इसमें किसी तरह की तबदीली नहीं होती। इसलिए हे अर्जुन, तू उस जीवात्मा को ऐसा जानकर शोक करने के योग्य नहीं है। तू उसके लिए शोक मत कर।

हे लम्बी भुजावाले अर्जुन, यह देही बार बार जन्मता और बार बार मरता है। यदि ऐसा भी तू जानता है तो भी इस बारे में शोक करना ठीक नहीं; क्योंकि जो पैदा हुआ है उसका एक न एक दिन नाश ज़रूर होता है। और, जो मरता है उसका जन्म भी ज़रूर होगा। अतएव इस पराधीन बात के लिए तू शोक करने के योग्य नहीं है।

हे भारत, जन्म लेने से पहले इन पुत्र, मित्र आदि भाईबन्दों का नाम-निशान भी नहीं था। और, जब ये मर जायँगे तब भी इनका कुछ नाम-रूप नहीं रहेगा। मनुष्य के नाम और रूप भी झूठे हैं, ठीक नहीं हैं। इसलिए तू ऐसे प्राणियों के लिए विलाप मत कर।

इस आत्मा को कोई विरला ही देखता है, कोई विरला ही कहता है और कोई विरला ही सुनता है। परन्तु देखकर, कहकर और सुनकर भी कोई इसे अच्छी तरह जान नहीं सकता।

हे अर्जुन, यह जीवात्मा सब प्राणियों में मौजूद है। पर यह शरीर के मारे जाने से मारा नहीं जाता। इसलिए किसी प्राणी के लिए तू कुछ सोच मत कर।

हे अर्जुन, अपने क्षत्रिय-धर्म को देखकर भी तुझे युद्ध से चलायमान नहीं होना चाहिए, युद्ध से नहीं हटना चाहिए। क्षत्रिय के लिए धर्मयुद्ध से बढ़कर और कोई बात नहीं।

हे पृथा के पुत्र, यह युद्ध खुला हुआ स्वर्ग का द्वार है। इस

तरह का युद्ध किसी बड़े भाग्यशाली क्षत्रिय को मिलता है। बात यह कि क्षत्रियों को युद्ध करने से नहीं हटना चाहिए। यह तो उनका धर्म ही है। यदि युद्ध में जीत हो गई तो कहना ही क्या, और यदि लड़ाई में मारा भी जाय तो भी वह मरकर स्वर्ग पाता है। क्योंकि उसने अपने धर्म के लिए प्राण दिये हैं। इसलिए युद्ध में सदा भलाई ही है।

हे अर्जुन, अब यदि अपने धर्म के अनुसार तू इस युद्ध में न लड़ेगा तो तुझे बड़ा पाप लगेगा। तेरे धर्म और यश सब जाते रहेंगे और सब लोग तेरी निन्दा करेंगे। प्रतिष्ठित पुरुष की निन्दा मौत से भी बढ़कर दुख देनेवाली होती है। जो शूर-वीर योद्धा आज तुझे इतना मान देते हैं, जो आज तेरी इतनी बड़ाई करते हैं वे अब यही कहेंगे कि अर्जुन संग्राम से डरकर भाग गया। हे अर्जुन, इतने दिनों की अपनी प्रतिष्ठा को अब तू ख़ाक में मिला देगा! अब तेरी सारी प्रतिष्ठा मिट्टी में मिल जायगी।

तेरे पराक्रम की निन्दा करते हुए तेरे शत्रु अब तेरी बड़ी हँसी उड़ावेंगे। इससे अधिक दुख और तुझे क्या होगा?

यदि लड़ाई में मारा भी जायगा तो स्वर्ग मिलेगा अर्थात् अगले जन्म में सुख मिलेगा और जो जीत हो गई तो भूमण्डल का राज्य भोगेगा। इसलिए, हे कुन्ती के पुत्र, तू युद्ध के लिए पक्का इरादा करके उठ।

सुख-दुख, लाभ-हानि, जीत और हार की तरफ़ तू कुछ ध्यान मत कर। तू इनको बराबर समझकर युद्ध के लिए कोशिश कर। इस तरह युद्ध करने पर तुझे कोई पाप न लगेगा।

उद्योगी पुरुषों की बुद्धि एक ही होती है। जो निरुद्योगी हैं, आलसी हैं, उनकी बुद्धियों का कुछ ठिकाना नहीं। उनकी अनेक ही बुद्धि और अनेक ही मार्ग होते हैं। पर उद्योग में लगानेवाली बुद्धि एक ही है और उसका मार्ग भी एक ही है।

हे अर्जुन, स्वर्ग आदि फल में ही रात-दिन विश्वास रखने-वाले मूर्ख हैं और वे भी मूर्ख हैं जो कर्मकाण्ड से दूसरी किसी बात को जानते ही नहीं। जो तरह-तरह की कामनाओं के लिए काम करते हैं वे भी मूर्ख हैं। और जो लोग स्वर्गवास ही को परमपुरुषार्थ मान बैठते हैं वे भी अज्ञानी हैं। वे तरह-तरह के भोगों में लगे रहने के लिए तरह-तरह की बातें बनाया करते हैं। पर जो लोग भोग और ऐश्वर्यों में फँसे हुए हैं, या जिनका मन सिर्फ़ कर्मकाण्ड में ही लगा हुआ है, उनकी बुद्धि मज़बूत और पक्की नहीं होती।

हे अर्जुन! सत्वगुण, रजोगुण और तमोगुण रूप जो संसारी सुख हैं उन्हीं को वेद प्रकाश करते हैं। हे अर्जुन, तू इन तीनों गुणों को छोड़ दे। तू निष्काम हो जा। तू किसी चीज़ की इच्छा मत कर। तू सुख-दुख का कुछ ख़याल मत कर। तू धीरज को धारण कर। यह चीज़ कैसे मिलेगी, यह कैसे रहेगी—इसकी चिन्ता तू बिलकुल छोड़ दे।

छोटे-छोटे ताल-तलैयों से जो काम होते हैं वे काम बड़े-बड़े सरोवरों—तालाबों—से बड़ी आसानी से हो जाते हैं। इसी तरह समस्त वेदों से जो काम बनते हैं वे सब ब्रह्म जाननेवाले को सहज ही में प्राप्त हो जाते हैं।

अर्थात् ईश्वर का ज्ञान वेदों से भी बढ़कर है। इसलिए हे अर्जुन, तू अब काम होने न होने का कुछ सोच न कर। सिद्धि-असिद्धि का कुछ विचार मत कर और समदृष्टि होकर काम कर। इस समबुद्धि को योग कहते हैं।

हे धनञ्जय! जो लोग ज्ञान तो कुछ रखते नहीं और रात-दिन काम-धन्धों में लगे रहते हैं, वे ज्ञानी पुरुष की बराबरी नहीं कर सकते। इसलिए तू ज्ञान में मन लगा। ज्ञान को छोड़कर जो लोग किसी मतलब से काम करते हैं वे अधम हैं। इसलिए तू ज्ञान को मत छोड़।

ज्ञानी पुरुष इस लोक में पाप-पुण्य से छूट जाता है। वह अपनी ज्ञानरूपी आग से पुण्य और पाप रूपी ईंधन को भस्म कर डालता है। फिर वह सारे दुखों से छुट जाता है।

ज्ञानी पुरुष कर्मों के फलों को छोड़ देता है। फिर वह जन्म-बन्धन से भी छुट जाता है। फिर वह परमपद को पा लेता है।

हे अर्जुन! जब तेरी बुद्धि अज्ञानरूप मलिनता को छोड़ेगी अर्थात् जब तेरी बुद्धि का अज्ञानरूप मैल दूर हो जायगा तब तुझे सब बातों से छुटकारा मिलेगा।

तरह-तरह के वेद-वाक्यों से भूल में पड़ी हुई तेरी बुद्धि जब स्थिर हो जायगी तब तू योग को पावेगा। तभी तुझे सब बातें मालूम होंगी।

यह सुनकर अर्जुन ने श्रीकृष्ण से पूछा—हे केशव! जिस पुरुष की बुद्धि निश्चल हो जाती है उस पुरुष का क्या लक्षण है?

यह पुरुष कैसे बोलता है, कैसे रहता है और कैसे चला करता है? यह सब समझाइए।

श्रीकृष्ण ने कहा—हे अर्जुन! जो पुरुष अपने मन में आई हुई इच्छाओं—ख्वाहिशों—को छोड़ देता है और कुछ भी इच्छा नहीं करता, पूरा सन्तोषी हो जाता है, वही पुरुष 'स्थित-प्रज्ञ' * कहलाता है अर्थात् उसकी बुद्धि स्थिर है।

जो दुखों से बिलकुल नहीं घबराता और सुखों में कभी नहीं फँसता, और जिसने प्रीति, डर और ग़ुस्से को छोड़ दिया है वह मुनि स्थितप्रज्ञ है।

जो किसी चीज़ में स्नेह नहीं करता और अच्छी चीज़ को पाकर आनन्द में और बुरी चीज़ को पाकर दुख में नहीं डूब जाता उसकी बुद्धि स्थिर समझनी चाहिए।

जिस तरह कछुआ अपनी गर्दन को समेट लेता है इसी तरह जो पुरुष अपनी इन्द्रियों को विषयों से हटा लेता है उसकी बुद्धि स्थिर समझनी चाहिए।

जो मनुष्य खाना-पीना छोड़कर तप में लग जाता है उसको विषयों की इच्छा नहीं होती; पर तो भी कुछ न कुछ विषय-वासना ज़रूर बनी ही रहती है। पर जिसकी बुद्धि स्थिर हो गई है उसकी वासना भी नष्ट हो जाती है। क्योंकि वह परब्रह्म को देख लेता है।

---

* जिसकी बुद्धि स्थित अर्थात् निश्चल हो उसे 'स्थितप्रज्ञ' कहते हैं।

हे अर्जुन! यह इन्द्रियों का समूह* बड़ा बली है। हज़ार कोशिश करते रहने पर भी यह मनुष्य के मन को ज़बरदस्ती हर लेता है।

हे अर्जुन! तू अपनी सब इन्द्रियों को रोककर मेरे कहने से एकचित्त (सुचित) हो जा। क्योंकि जिसकी इन्द्रियाँ वश में होती हैं उसकी बुद्धि स्थिर कही जाती है।

जो मनुष्य रात-दिन या कभी-कभी विषयों का ध्यान किया करता है, उसकी उन विषयों में प्रीति पैदा हो जाती है। प्रीति के होते ही इच्छा पैदा हो जाती है और फिर उस इच्छा के होते ही क्रोध पैदा हो जाता है। उस क्रोध से मनुष्य का विवेक नष्ट हो जाता है, अर्थात् क्या काम करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए, इस बात का विचार उसको बिलकुल नहीं रहता। उस अविवेक—अज्ञान—बे-समझी—से उसकी स्मृति (याद-दाश्त की ताक़त) का नाश हो जाता है। स्मृति के नाश हो जाने पर बुद्धि नष्ट हो जाती है। बस, जहाँ बुद्धि का नाश हुआ तहाँ रहा ही क्या? फिर सर्वस्व नष्ट हो जाता है।

जो पुरुष अपनी इन्द्रियों को राग—मोहब्बत—और द्वेष—नफ़रत—से अलग रखकर, अपने वश में रखकर, विषयों का सेवन करता है वह प्रसन्न रहता है। प्रसन्नता के होने से सारे दुःख

---

* इन्द्रियाँ दो तरह की हैं, (१) ज्ञान-इन्द्रियाँ, (२) कर्म-इन्द्रियाँ। ज्ञान की पांच इन्द्रियाँ ये हैं, १—आँख, २—कान, ३—नाक, ४—जीभ, और ५—त्वचा। और पाँच कर्म-इन्द्रियाँ ये हैं, १—हाथ, २—पाँव, ३—मुँह, ४—उपस्थ और ५—गुदा।

दूर हो जाते हैं। उस प्रसन्नचित्त पुरुष की बुद्धि बहुत जल्द स्थिर हो जाती है।

जो मनुष्य इन्द्रियों को वश में नहीं रखता उसकी बुद्धि स्थिर नहीं होती और उसको आत्मज्ञान भी नहीं होता। जिसको आत्मज्ञान नहीं हुआ उसे शान्ति कहाँ? जिसे शान्ति नहीं उसे सुख भी नहीं हो सकता।

जिस तरह जल में पड़ी हुई नाव को वायु डाँवाडोल कर डालता है, स्थिर नहीं रहने देता और डुबोकर ही छोड़ता है, इसी तरह विषयों में लगा हुआ यह मन, जिस इन्द्रिय से टकराता है उसी से इस मनुष्य की बुद्धि को डुबो देता है।

इसलिए हे अर्जुन! जिसने अपनी इन्द्रियों को सब विषयों से अलग खींच लिया है उस पुरुष की बुद्धि स्थिर होती है।

और सब प्राणियों की जो रात है वह जितेन्द्रिय पुरुष का दिन है। और जो सब प्राणियों का दिन होता है वह जितेन्द्रिय पुरुष की रात होती है।

इसी का दूसरा मतलब इस तरह भी हो सकता है—

संसारी जन परमार्थ की ओर से सोये ही से रहते हैं; पर जितेन्द्रिय पुरुष उधर जागता है, अर्थात् वह परब्रह्म का ज्ञान प्राप्त करता है। और संसारी जन जिन काम-धन्धों में लगे रहते हैं अर्थात् जागते रहते हैं, उधर वह जितेन्द्रिय पुरुष सोता है अर्थात् वह उनकी तरह काम-धन्धे नहीं करता।

जिस तरह समुद्र में चारों ओर से बड़ी-बड़ी नदियों का जल पड़ा करता है तो भी वह अपनी मर्यादा नहीं छोड़ता, जल के

आ पड़ने से वह नहीं फूलता, इसी तरह जो पुरुष, विषयों का संग होते हुए भी उनमें फँसता नहीं, वह शान्ति को पाता है। परन्तु भोगों की कामना, इच्छा, करनेवाले को कभी शान्ति या सुख नहीं मिला करता।

हे अर्जुन! शान्ति उसी पुरुष को मिलती है जो सब तरह की इच्छाओं को छोड़ कर निःस्पृह विचरता है। वही ममता और अहं-कार को छोड़नेवाला पुरुष शान्ति को पाता है।

तीसरा अध्याय

कर्म की प्रधानता

कर्म करने की बुराई और इच्छाओं के छोड़ देने की बात सुन कर अर्जुन बोला--हे जनार्दन! यदि आपकी राय में कर्म करने की अपेक्षा ज्ञान-योग ही अच्छा है, यदि आपके मत में इच्छाओं का छोड़ देना ही उत्तम गिना जाता है, तो फिर मुझको इस भयङ्कर काम—लड़ाई—में आप क्यों लगाना चाहते हैं? आपकी राय से तो अब मुझे कुछ करना ही न चाहिए।

आपकी ये दोनों तरह की बातें—कर्म की और ज्ञान की—सुनकर मेरी बुद्धि चकरा रही है। कृपा करके आप एक ऐसी बात कहिए, जिससे मेरा भला हो।

यह सुन कर श्रीकृष्ण भगवान् ने कहा—हे अर्जुन! मैं दो बातें पहले कह चुका हूँ। १ कर्मयोग, २ ज्ञानयोग।

हे अर्जुन! सिर्फ़ काम करना बन्द करने से कोई कर्मों के बन्धनों से नहीं छूट सकता। संन्यास अर्थात् कामों को छोड़ देने से भी कुछ भलाई नहीं दिखाई देती। बात यह कि काम न करता हुआ कोई कभी ज़रा सी देर भी नहीं रह सकता।

क्योंकि ईश्वर का नियम मनुष्य से सदा कुछ न कुछ काम कराता ही रहता है।

जो पुरुष काम तो कुछ करता नहीं, और मन से विषयों का ध्यान बराबर करता रहता है, वह अज्ञानी पुरुष मिथ्याचारी है, झूठा है और छली है।

हे अर्जुन! जो पुरुष मन से ज्ञान-इन्द्रियों (आँख, कान, नाक, जीभ और खाल) को रोककर, विषयों में लगा हुआ काम करता है वह उत्तम है। मतलब यह निकला, कि पुरुष को हाथ पर हाथ धर कर नहीं बैठना चाहिए। उसे हर वक़्त काम करते रहना चाहिए; बाहर से; दिखावे के लिए, काम न करना और मन में भीतर तरह-तरह के विषयों की इच्छा रखना अच्छा नहीं। बल्कि वह पुरुष सबसे अच्छा है जो मन से तो ज्ञान-इन्द्रियों को वश में रखता है, और बाहर से काम करता रहता है। ख़ुलासा इस तरह समझना चाहिए कि कर्म-इन्द्रियों के रोकने से कुछ फ़ायदा नहीं; फ़ायदा तो ज्ञान-इन्द्रियों के रोकने से है।

यह विषय बड़ा कठिन है। यह जितना कठिन है उतना ही उपयोगी है। इसलिए इस बात को हम और साफ़ करके कहते हैं।

इस बात के समझने के लिए पहले दोनों तरह की इन्द्रियों और उनके कामों को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए। हम पहले लिख चुके हैं कि इन्द्रियाँ दो तरह की हैं। एक ज्ञान-इन्द्रियाँ, दूसरी कर्म-इन्द्रियाँ। आँख, कान, नाक, जीभ और त्वचा (चमड़ा) ये पाँच ज्ञान की इन्द्रियाँ हैं। अर्थात् इनसे हमें बहुत सी बातों की अच्छाई और बुराई की पहचान होती है। आँखों से हमें

तरह-तरह की चीज़ें दिखलाई देती हैं। इस किताब को हम आँखों से ही देखते हैं। आँखों का काम देखना है। यही 'देखना' आँख इन्द्रिय का विषय—काम—कहलाता है।

इसी तरह कान से हम सब तरह की आवाज़ों को सुनते हैं। इसलिए कान इन्द्रिय का विषय 'सुनना' है।

नाक से हम ख़ुशबू या बदबू को सूँघते हैं। इसका काम सूँघना है। इसलिए 'सूँघना' नाक इन्द्रिय का विषय कहा जाता है।

जीभ से हम स्वाद चखते हैं। खट्टा, मीठा, चरपरा, तीखा आदि रसों का स्वाद—ज़ायका—जीभ से ही मिलता है। इसलिए जीभ इन्द्रिय का विषय रस का स्वाद चखना है।

ज्ञान की पाँचवीं इन्द्रिय त्वचा है, जिसे भाषा में चमड़ा कहते हैं। इससे हमें स्पर्श करने—छूने—का ज्ञान होता है। हमारे हाथ पर अगर कोई बर्फ़ का डला रख दे तो हमको फ़ौरन मालूम पड़ जाता है। हम फ़ौरन समझ जाते हैं कि यह बहुत ठण्ढी बर्फ़ है। इसी तरह गरमी का भी ज्ञान हमें इसी चमड़े से होता है। इसलिए इसका काम 'छूना' है।

यह तो हुई ज्ञान की पाँचों इन्द्रियों की बात। अब कर्म की भी पाँचों इन्द्रियों की बात सुनिए। हाथ, पाँव, मुँह, उपस्थ, गुदा—ये पाँच कर्म-इन्द्रियाँ हैं। हाथ का काम करना, पाँवों का काम चलना, मुँह का काम बोलना, उपस्थ का काम पेशाब करना, और गुदा का काम मल निकालना है। हर एक इन्द्रिय का जो काम है वही उसका विषय समझना चाहिए।

अच्छा तो श्रीकृष्ण महाराज की कही हुई बात को अब समझना चाहिए।

श्रीकृष्णचन्द्र कहते हैं कि हे अर्जुन! इच्छाओं को छोड़ दे, ख़्वाहिश मत कर और इन्द्रियों को अपने वश में कर। इसी में तेरी भलाई है।

पर, इस बात को अच्छी तरह न समझ कर या इस बात को और साफ़ तौर से सुनने की इच्छा से, अर्जुन ने कहा कि भगवन्! जब आप कहते हैं कि इच्छाओं को छोड़ दे, कामों का त्याग कर दे और ज्ञानी हो जा, तब आप मुझे लड़ाई के लिए बार-बार क्यों उसका रहे हैं?

श्रीकृष्णचन्द्र ने कहा कि हे अर्जुन! मेरे कहने का यह मतलब नहीं है कि तुम हाथ पर हाथ रख कर बैठ जाओ। मेरे कहने का मतलब साफ़ यह है कि तुम सब तरह की इच्छाओं को छोड़ दो, किसी तरह की ख़्वाहिश मत करो। मैं यह नहीं कहता कि तुम कुछ काम भी मत करो। नहीं, तुम बराबर अपनी पाँचों इन्द्रियों से काम लेते रहो। इन पाँचों इन्द्रियों से ज़रूर काम लेना चाहिए। कोई आदमी इनसे बिना काम लिये रह ही नहीं सकता।

हे अर्जुन! यदि तू भलाई चाहता है तो ज्ञान-इन्द्रियों को वश में कर। ज्ञान-इन्द्रियों के वश में रखने से इच्छाएँ अपने आप कम हो जायँगी। बिना ज्ञान-इन्द्रियों के वश में किये इच्छाओं का रोकना नहीं हो सकता।

हे अर्जुन! तू नियत कामों को कर। काम न करनेवाले से

करनेवाला अच्छा होता है। यदि तू काम न करेगा तो तेरे शरीर का पालन भी न होगा।

ईश्वर की प्राप्ति के अलावा काम करने से जीव बन्धन में फँस जाता है। इसलिए हे कुन्ती के पुत्र! ईश्वर की प्राप्ति के लिए सङ्ग छोड़कर काम कर।

ब्रह्मा का उपदेश है कि हे प्रजाओ! इस यज्ञ से तुम सब बढ़ो। यह यज्ञ तुम्हारे सब मनोरथ पूरा करे। इस यज्ञ से तुम सब देवों की पूजा करो। इस तरह आपस में अच्छी तरह बर्ताव करते हुए तुम लोग सदा सुखी रहोगे। यज्ञ से प्रसन्न होकर देवता तुमको सुख देंगे। जो पुरुष बिना यज्ञ किये—बिना देवताओं को दिये—आप ही खाता-पीता है वह चोर है। यज्ञ के बचे हुए अन्न को खानेवाला पापों से छुट जाता है। जो पापी लोग सिर्फ़ अपने ही पेट के लिए पकाते हैं वे पाप—दुख—ही पाते हैं।

हे अर्जुन! अन्न से प्राणियों की उत्पत्ति होती है, अर्थात् अन्न न हो तो कोई प्राणी नहीं जी सकता। वह अन्न मेघों से पैदा होता है। अर्थात् पानी न बरसे तो अन्न का एक दाना भी पैदा न हो। यह मेघ यज्ञ से पैदा होते हैं। अर्थात् यज्ञ न हो और देवताओं को प्रसन्न न किया जाय तो बादल ही नहीं बन सकते। जब बादल ही नहीं बनते तब वर्षा कहाँ से हो। इसलिए मेघों का कारण यज्ञ है और यह यज्ञ कर्म से होता है। कर्म किया जाय तो यज्ञ हो।

पाठक! कैसे खेद की बात है कि हम श्रीकृष्ण की आज्ञा का पालन नहीं करते। वैसे तो हम राम-कृष्ण की तारीफ़ करते हुए आकाश-पाताल एक कर दें, रात-दिन उनका नाम रटा करें, और

यहाँ तक कि उनको साक्षात् ईश्वर मानें, पर उनकी बातों पर हम कुछ भी ध्यान नहीं देते, उनकी आज्ञाओं की ओर हमारी नज़र भी नहीं उठती, उनके बताये हुए साफ़ मार्ग पर हम एक क़दम भी नहीं रखते।

सच मानिए, यदि हम राम-कृष्ण की बातों को मानते, यदि हम उनके बताये हुए सीधे रास्ते पर चलते, तो आज ऐसे दुखी न रहते। उनकी आज्ञाओं के भङ्ग करने का पाप ही हमें तरह-तरह के दुख दे रहा है। इसमें सन्देह नहीं।

आज हम इतने दीन और दुखी क्यों हैं? आज हमारे बड़े भारी उपजाऊ देश में सैकड़ों नहीं, हज़ारों नहीं, लाखों प्राणी अन्न के बिना क्यों भूखे मर रहे हैं? आज हमारा देश निर्धन, निर्बल और निर्जन क्यों हुआ जाता है? आज हमारा देश प्लेग जैसे महाभयङ्कर रोगों का मौरूसी अड्डा क्यों बन रहा है? अगर कोई हमसे पूछे तो हम यही कहेंगे, कि "श्रीकृष्ण महाराज की आज्ञा का पालन न करने से ही ये सब आपदायें आ रही हैं।" यदि हम सब आज श्रीकृष्ण की आज्ञा का पालन करने लगें तो सच मानिए, हमारी तमाम आपदायें एकदम छूमन्तर हो जायँ।

देखिए, श्रीकृष्ण महाराज कहते हैं कि हे अर्जुन! तू यज्ञ के लिए कर्म कर। क्योंकि यज्ञ से मेघ बनते हैं और मेघों से—पानी बरसने पर—अन्न पैदा होता है और अन्न से प्राणी ज़िन्दा रहते हैं।

अहा! क्या ही अच्छा उपदेश है। हमारे देश के लिए इस समय, इससे अच्छा और कोई उपदेश नहीं हो सकता। हमारे कल्याण के लिए इससे अच्छी बात और क्या हो सकती है?

इस साल देखिए, कैसा भारी दुर्भिक्ष पड़ा है। इस साल हमारा सारा देश दुर्भिक्ष से कैसा सताया जा रहा है। इस साल पानी न बरसने से गेहूँ के आटे का भाव छः सेर और उर्द की दाल का चार सेर हो गया है।

यदि भारतवर्ष के सब लोग अपने धर्मों का पालन करने लगें और श्रीकृष्ण महाराज की आज्ञा से हर एक मनुष्य प्रतिदिन थोड़ा-बहुत, और अमावस और पूनों को कुछ विशेष हवन किया करे तो हमारी राय में ऐसा संकट देखने में न आया करे।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने जो हमको रोज़-रोज़ पाँच काम करने के लिए बताये हैं उनमें अग्नि में हवन करना भी एक काम है। अगर हम इस नियम से अपना जीवन सुधार लें और अपने करने के कामों को करने लगें तो हमें ऐसे-ऐसे दुख न उठाने पड़ें।

प्यारे पाठको! श्रीकृष्णचन्द्रजी की आज्ञा को भङ्ग मत करो।

श्रीकृष्ण ने फिर कहा—हे अर्जुन! ऊपर कहे हुए नियमों के अनुसार जो नहीं चलता उसका जीवन पाप-रूप है। जिसकी उम्र इन्द्रियों ही के शौक़ पूरा करने में बीत जाती है उसका जीवन व्यर्थ है।

जो पुरुष सदा आत्मा ही में रमा रहता है, आत्मा ही के सुख से तृप्त रहता है और आत्मा में ही संतुष्ट रहता है अर्थात् जो सदा ईश्वर की भक्ति में ही मगन रहता है उसको कुछ कर्तव्य नहीं है। उसको काम करने या न करने में कुछ फ़ायदा नहीं। उस ज्ञानी को, छोटे से जीव से लेकर बड़े से बड़े प्राणी तक, किसी से कुछ मतलब नहीं है।

परन्तु हे अर्जुन! तू वैसा नहीं है। इसलिए तू ज्ञान-इन्द्रियों

को जीत कर अपने करने लायक़ कामों को कर। विषयों में—ज्ञान-इन्द्रियों के कामों में—न फँस कर काम करनेवाला पुरुष परमपद—मोक्ष—को पा लेता है।

हे अर्जुन! कर्मों के ही प्रताप से, काम ही करने से, जनक आदि अनेक महापुरुष बड़ी भारी सिद्धि को पहुँच गये। इस लोक-मर्यादा, या दुनिया के रिवाज, को भी देख कर तुझे काम करना चाहिए। चुप बैठना अच्छा नहीं।

बड़े और भले आदमी जैसा-जैसा काम किया करते हैं उनकी देखा-देखी और-और लोग भी वैसा ही काम करने लगते हैं। बड़ा आदमी जिसे अच्छा समझता है उसे और लोग भी अच्छा समझने लगते हैं।

हे भारत! मूर्ख जन कर्मों के विषयों में फँस कर काम किया करते हैं और ज्ञानी जन उनसे बच कर। ज्ञानी जन लोक-मर्यादा बनाये रखने के लिए काम किया करते हैं।

ज्ञानी पुरुष को अज्ञानी पुरुषों की बुद्धि को, जो काम करने में लगी हुई है, चञ्चल नहीं करना चाहिए। ज्ञानी पुरुषों को चाहिए कि वे सावधान होकर आप कर्म करें और दूसरों से भी करावें।

हे अर्जुन! सब कामों को ज्ञान की नज़र से मेरे ऊपर भरोसा करके छोड़ दे और भाईबन्दों की ममता छोड़ कर ख़ुशी से युद्ध कर।

जो पुरुष सीधी और सच्ची बुद्धि से मेरे इस कहने में रह कर काम करता है वह किसी कर्म-बन्धन में नहीं फँसता; उसे

किसी तरह का दुख नहीं मिलता। पर जो लोग इस मेरी राय से काम नहीं करते, अपनी मनमानी करते हैं, वे अज्ञानी हैं, मूर्ख हैं। ऐसा जान।

हे अर्जुन! कोई इन्द्रिय किसी बात को पसन्द करती है, किसी को नापसन्द। किसी चीज़ में उनकी प्रसन्नता होती है, किसी में द्वेष। उनके अधीन नहीं होना चाहिए। क्योंकि ये दो बातें पुरुष के लिए वैरी हैं।

अपना धर्म चाहे गुणहीन ही क्यों न हो परन्तु पराये गुण-वाले धर्म को देखकर अपना धर्म नहीं छोड़ देना चाहिए। अपना ही धर्म उत्तम समझना चाहिए। अपने धर्म में मरना भी अच्छा। क्योंकि पराया धर्म नरक में ले जाता है।

यह सुनकर अर्जुन ने पूछा—हे श्रीकृष्ण! इच्छा न करने पर भी ज़बरदस्ती यह पुरुष किसकी प्रेरणा से, किसकी मदद से, पाप करने लगता है?

इसके जवाब में भगवान् ने कहा—हे अर्जुन! काम (इच्छा) और क्रोध (गुस्सा) ये दोनों रजोगुण से पैदा होते हैं। यह काम तरह-तरह के भोग भोगने से घटता नहीं और बढ़ता ही जाता है। इसमें बड़े-बड़े दोष हैं। यही एक शत्रु है।

जैसे धुएँ से अग्नि, मल से दर्पण और गर्भ की झिल्ली से गर्भ का बालक ढका रहता है, इसी तरह इस काम से ज्ञान ढका रहता है। अर्थात् ज्ञानरूपी दर्पण इच्छारूपी धूल से मैला रहता है। जिस तरह मिट्टी-धूल के साफ़ कर देने से दर्पण साफ़ होकर

चमकने लगता है इसी तरह इच्छाओं की सफ़ाई करने से ज्ञान चमकने लगता है ।

यह काम—इच्छा—रूपी अग्नि कभी तृप्त नहीं होता, ख़्वाहिश कभी पूरी नहीं होती । एक पूरी हुई चार नई आ खड़ी हुईं । इस इच्छा ने मनुष्य के ज्ञान पर परदा डाल रक्खा है ।

हे अर्जुन ! यह इच्छा कहाँ रहती है—इसके रहने की जगह कहाँ है— तू जानता है ? इसके रहने के घर तीन हैं—इन्द्रिय, मन और बुद्धि । इन तीनों का सहारा पाकर यह इच्छा मनुष्य को मोहित कर लेती है, अपने वश में कर लेती है ।

इसलिए हे अर्जुन ! सबसे पहले तू अपनी इन्द्रियों को अपने अधीन करके ज्ञान के नाश करनेवाले काम को मार ।

हे अर्जुन ! शरीर से परे इन्द्रियाँ हैं और इन्द्रियों से परे मन । मन से परे बुद्धि और उससे परे आत्मा है ।

हे महाबाहो ! इस तरह बुद्धि से परे आत्मा को जान और मन को स्थिर करके तू इस बड़े कठिन शत्रु काम को मार ।

चौथा अध्याय

दुःखनाशक कर्मों की व्यवस्था

श्रीकृष्ण भगवान् फिर बोले—हे अर्जुन! यह योग, यह उपदेश, जो मैंने अब तुझे सुनाया है, पहले सूर्य से* कहा था। सूर्य ने मनु से कहा और मनु ने इक्ष्वाकु राजा से कहा। इसी तरह होते-होते यह योग राजर्षियों ने जाना। और, फिर, बहुत दिन बाद यह योग नष्ट हो गया था। सो यह बड़ा पुराना ज्ञान मैंने तुझसे कहा है, क्योंकि तू मेरा भक्त और मित्र है।

यह सुन कर अर्जुन को बड़ा अचरज हुआ। उसने अपना सन्देह दूर करने के लिए पूछा—

हे कृष्ण! तुम्हारा जन्म तो अब हुआ है और सूर्य का जन्म बहुत पहले हुआ था। मैं कैसे समझूँ कि तुमने पहले उनसे कहा है?

श्रीकृष्ण ने कहा—हे परन्तप अर्जुन! मेरे अनेक जन्म हुए हैं। उन सबको मैं जानता हूँ। तू नहीं जानता। मैं जन्म से रहित हूँ। मेरा जन्म कभी नहीं होता। मैं प्राणियों का स्वामी होकर अपनी इच्छा से जन्म ले लेता हूँ।

---

* यह सूर्यवंश का मूल-पुरुष है। इसी के नाम से सूर्यवंश विख्यात है।

हे भारत ! जब-जब संसार में धर्म की घटती और अधर्म की बढ़ती हो जाती है तब-तब मैं जन्म लेता हूँ।

सज्जनों की रक्षा और दुर्जनों के संहार के लिए और धर्म की रक्षा के लिए मैं युग-युग में जन्म लेता हूँ।

हे अर्जुन ! इस तरह मेरे जन्म और कर्मों को जो अच्छी तरह जानता है वह मनुष्य संसार में जन्म नहीं लेता। अर्थात् उसकी मोक्ष हो जाती है।

प्रीति, डर और क्रोध दूर करके और सब तरह से मुझमें ही मन लगा कर और मेरे ही सहारे रह कर कितने ही लोग ज्ञान-रूप तप से पवित्र होकर मुझको प्राप्त हो गये हैं। अर्थात् जो पुरुष सबसे प्रीति हटा लेता है, किसी का डर नहीं करता और क्रोध को बिलकुल त्याग देता है और सब तरह से परमात्मा ही की भक्ति किया करता है और उसी के सहारे रहा करता है वह ज़रूर इस संसार से छुट जाता है।

जो पुरुष परमात्मा को जिस तरह भजते हैं उन्हें परमात्मा भी वैसा ही फल देते हैं। सब मनुष्य ईश्वरीय मार्ग पर ही चला करते हैं।

हे अर्जुन ! इस लोक में कर्म की सिद्धि की चाहना करनेवाले लोग देवताओं की पूजा किया करते हैं। क्योंकि इस लोक में ऐसा करने से जल्द सिद्धि मिल जाती है।

गुण और कर्मों के भेद से परमात्मा ने चार वर्ण बनाये हैं— ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। तो भी परमात्मा को अकर्ता कहते हैं। क्योंकि उनमें किसी तरह का विकार नहीं आता। इसलिए परमात्मा निर्विकार है।

मुझको कर्म नहीं बाँधते, मुझे कर्मों के फलों की ज्यादा ख़्वाहिश नहीं है—जो इस तरह समझता है वह कर्मों के बन्धन में नहीं बँधता।

हे अर्जुन! इन सब बातों को जान कर बड़े-बड़े ज्ञानी लोग भी कर्म किया करते हैं। इसलिए सदा से होनेवाले कामों को तू पहले कर।

हे अर्जुन! क्या कर्म है, और क्या अकर्म, अर्थात् क्या करना चाहिए और क्या नहीं—इस बात को ठीक-ठीक पण्डित जन भी नहीं जानते। इसलिए मैं तुमसे उन कर्मों को कहता हूँ जिन्हें जान कर तू दुःख से छूट जायगा।

जिसके सब उद्योग, जिसकी तमाम कोशिशें, इच्छाओं से रहित हैं और ज्ञानरूपी अग्नि से जिसके सब काम भस्म हो गये हैं उसको ज्ञानी लोग पण्डित कहते हैं।

जो पुरुष सब इच्छाओं को दूर करके, सुचित्त होकर बन्धन के कारणों को छोड़ कर, सिर्फ़ अपने शरीर-पालन के ही लिए काम करता है वह पाप का भागी नहीं होता।

अपने आप ही, बिना कोशिश किये, जो चीज़ मिल जाय उसी में संतुष्ट रहनेवाला, सर्दी-गर्मी, सुख-दुःख आदि द्वंद्वों के दुखों को सहन करनेवाला और काम सुधरने और बिगड़ने में एकसा रहनेवाला पुरुष कर्म करके भी कर्मों के बन्धनों में नहीं बँधता।

कोई योगी देवताओं के उद्देश से यज्ञ करता है। कोई ब्रह्मरूपी अग्नि में ब्रह्मरूप ही हविष से होम करता है। कोई इन्द्रियों को जीतनारूप यज्ञ करते हैं। कोई इन्द्रियों को अपने-

अपने विषयों से अलग रखनारूप ही यज्ञ करते हैं । कोई-कोई योगी ज्ञान से आत्मा में प्रकाश करके उसमें सब इन्द्रियों और प्राणों का हवन करते हैं। कोई दानरूप यज्ञ करते हैं । कोई तपस्या-रूप यज्ञ करते हैं । कोई योगरूपी यज्ञ करते हैं । कोई नियम-पालन करके वेदों का पढ़नारूप यज्ञ करते हैं और कोई ज्ञान की प्राप्तिरूप यज्ञ करते हैं ।

ये सब यज्ञ करनेवाले अपने पापों को दूर करते हैं । अर्थात् इन कामों को करने से पाप दूर हो जाते हैं ।

हे कुरुश्रेष्ठ ! यज्ञ से बचे हुए अन्न को खानेवाले मनुष्य पर-मात्मा को प्राप्त हो जाते हैं । जो पुरुष यज्ञ नहीं करते उनको इस लोक में भी सुख नहीं होता । फिर परलोक की तो बात ही क्या ।

हे अर्जुन ! किसी चीज़ से होनेवाले यज्ञ से ज्ञान-यज्ञ श्रेष्ठ है । क्योंकि सब कामों के फलों का निचोड़ ज्ञान में होता है ।

ज्ञान-यज्ञ बड़ा कठिन है । जब तू तत्त्वज्ञानी ऋषि-मुनियों को प्रणाम करके, उनकी सेवा करके, उनसे बार-बार पूछेगा तब वे तुझे इस ज्ञान का उपदेश करेंगे ।

हे पाण्डव ! जब तुझे वह ज्ञान हो जायगा तब तू ऐसी अज्ञान की बात न करेगा । तभी तुझे सब बातों का ज्ञान होगा । फिर तू सब प्राणियों को समान भाव से देखेगा ।

यदि तू पापियों से भी ज़्यादा पाप करेगा तो भी तू इस ज्ञान-रूप नाव से पापरूपी समुद्र को सुख से तर जायगा ।

हे अर्जुन ! जिस तरह जलता हुआ अग्नि लकड़ियों को भी

जला डालता है इसी तरह ज्ञानरूपी अग्नि से सब कर्म भस्म हो जाते हैं ।

ज्ञान के बराबर पवित्र चीज़ इस संसार में और कोई नहीं है । कर्म करनेवाला पुरुष, काम करता हुआ अपने आप ही ज्ञान को पा लेता है ।

जिसने इन्द्रियों को जीत लिया हो, जिसे ज्ञान की चाह हो और जो श्रद्धावाला हो वही ज्ञान को पा सकता है । ज्ञान को पाते ही पुरुष को झट शान्ति मिल जाती है ।

जो अज्ञानी पुरुष धर्म में श्रद्धा नहीं रखता और सदा हर काम में सन्देह ही किया करता है वह नाश को प्राप्त हो जाता है । जिसका मन सदा सन्देह ही में डूबा रहता है उसे—न इस लोक में और न परलोक में—कहीं भी सुख नहीं मिलता ।

हे अर्जुन ! योगरीति से जो पुरुष कामों का त्याग कर देते हैं अर्थात् इच्छाओं को वश में करके काम किया करते हैं और अपने ज्ञान से सब सन्देह दूर कर देते हैं उन सावधान पुरुषों को कर्म नहीं बाँध सकते ।

हे अर्जुन ! इसलिए तू अपने हृदय के भीतर पैदा हुए अज्ञान-रूपी सन्देह को ज्ञान-रूपी शस्त्र से काट और योग का सहारा लेकर उठ । युद्ध कर ।

पाँचवाँ अध्याय

संन्यास और कर्मयोग

इतना सुन कर अर्जुन ने कहा कि हे कृष्ण! आप कर्मों के छोड़ने को भी अच्छा कहते हैं और साथ ही कर्मों को करने की भी बड़ाई करते जाते हैं। कृपा कर आप यह बतलाइए कि इन दोनों में कौन सा काम अच्छा है?

श्रीकृष्ण भगवान् ने कहा—हे अर्जुन! संन्यास (कामों का छोड़ना) और कर्मयोग (कामों का करना) ये दोनों ही मोक्ष के देनेवाले हैं। पर इन दोनों में काम के छोड़ने से तो काम करना ही उत्तम है।

संन्यासी का लक्षण

हे अर्जुन! जो किसी से द्वेष—नफ़रत—नहीं करता, किसी चीज़ की इच्छा—ख़्वाहिश—नहीं करता, वह पूरा संन्यासी है। वह संन्यासी, सुख और दुःख से छुटा हुआ बड़ी आसानी से संसारी बन्धनों से छुट जाता है।

कर्म और संन्यास की अभिन्नता

हे अर्जुन! सांख्य, अर्थात् जान कर कर्मों का त्याग (संन्यास), और योग, अर्थात् कर्मों का करना इन दोनों को बहुत से अज्ञानी

जन अलग-अलग कहते हैं। पर ज्ञानी जन इन दोनों को बराबर ही समझते हैं। इन दोनों में से एक को भी अच्छी तरह करनेवाले पुरुष को दोनों का फल मिल जाता है।

जो फल—मोक्ष—कर्म के छोड़नेवालों को मिलता है वही फल करनेवालों को भी मिलता है। जो इन दोनों को एक ही समझता है वही ज्ञानी है।

कर्मयोग की प्रधानता

हे बड़ी लम्बी भुजाओंवाले अर्जुन! योग के बिना संन्यास नहीं मिल सकता। योगी—कर्म करनेवाला—पुरुष संन्यासी हो कर बहुत जल्द ब्रह्म को पा सकता है।

अपने धर्मानुसार काम करनेवाले पुरुष का मन शुद्ध हो जाता है। फिर वह अपने आपको वश में कर लेता है। सब प्राणियों को बराबर की निगाह से देखनेवाला पुरुष कर्म करता हुआ भी कर्मों के दोष से अलग रहता है।

कर्म करनेवाला तत्वज्ञानी पुरुष सब काम करता हुआ भी अपने को अलग ही समझा करता है। वह यही समझा करता है कि ये इन्द्रियाँ ही अपना-अपना काम कर रही हैं; मैं कुछ नहीं करता। देखते, सुनते, छूते, सूँघते, खाते, चलते, सोते, साँस लेते, बोलते, मल-मूत्र का त्याग करते, इन्द्रियों को खोलता और मूँदता हुआ भी वह यही समझा करता है कि मैं कुछ भी नहीं करता। यह सब काम इन्द्रियाँ ही कर रही हैं।

जो कर्म के फल की इच्छा को छोड़ कर काम करता है,

अपने कर्म-फल को ईश्वर के ही भरोसे छोड़ देता है वह पाप का भागी नहीं होता—जैसे कमल के पत्तों पर पानी नहीं ठहरता।

बात यह कि कर्म के करने में उसके फल की कुछ चिन्ता नहीं करनी चाहिए। स्वार्थ को छोड़ कर काम करना चाहिए। ऐसा करने से उसको कोई पाप नहीं लगता।

योगी लोग अपनी शुद्धि के लिए विषयों में न फँस कर शरीर, मन, बुद्धि, अथवा केवल इन्द्रियों ही से काम किया करते हैं।

काम करनेवाला योगी पुरुष कर्म-फल की वासना छोड़कर परमेश्वर ही में लगा रहता है। परमेश्वर की भक्ति में रहते-रहते उनको पूरी शान्ति मिल जाती है, मोक्ष हो जाती है। पर जो लोग योग-हीन हैं अर्थात् काम तो करते नहीं, पर उनके फलों की इच्छाओं में फँसे रहते हैं, वे बँध जाते हैं। उनको मोक्ष नहीं होती। बात यह कि सिर्फ़ कर्मों के छोड़ने से कुछ नहीं होता; किन्तु कर्मों के फलों को छोड़ना चाहिए।

जो पुरुष अपने मन को वश में रखता है और मन से सब कामों को त्याग देता है, वह इस नौ दरवाज़े वाले नगर—शरीर—में सुख से निवास करता है। फिर उसको किसी तरह का दुःख नहीं होता।

परमेश्वर को किसी के पाप-पुण्य से कुछ मतलब नहीं रहता। बात यह है कि ज्ञान के ऊपर जो अज्ञान का पर्दा पड़ा रहता है उससे प्राणी मोह को प्राप्त हो जाता है।

हे अर्जुन! जिस पुरुष का अज्ञान नष्ट हो जाता है उसका ज्ञान परमेश्वर को ऐसा दर्शा देता है जैसे सारे संसार की चीज़ों को सूर्य।

जो लोग परमेश्वर को अपना समझते हैं, उसकी भक्ति में तल्लीन रहते हैं, वे ज्ञान से सब पापों को दूर करके संसार से छूट जाते हैं ।

जो ज्ञानी हैं और विद्या तथा नम्रता से युक्त हैं वे ब्राह्मण में, गाय में, हाथी में, कुत्ते में और चाण्डाल में कुछ भी भेद नहीं समझते । वे सब जीवों को बराबर देखते हैं । वे सबमें परमात्मा को देखने लगते हैं ।

जो लोग सबको समान देखने लगते हैं वे धन्य हैं । समझना चाहिए कि उन्होंने इसी लोक में संसार को जीत लिया । क्योंकि परमात्मा सब जगह, हर एक जीव में, समान ही रहता है । वे सब संसारी चीज़ें परमात्मा में ही स्थित हैं ।

जो पुरुष प्यारी चीज़ को पाकर ख़ुश न हो और बुरी चीज़ को पाकर नफ़रत न करे वह ब्रह्मज्ञानी कहाता है । उसे मोह-रहित समझना चाहिए और उसी की बुद्धि स्थिर समझनी चाहिए ।

जो पुरुष अपनी इन्द्रियों को रोक कर ध्यान में सुख पाता है वही सुख—बल्कि उससे भी ज़्यादा आनन्द—उसको मिलता है जो सदा ब्रह्म में लीन रहता है ।

हे कौन्तेय ! इन्द्रियों के द्वारा पैदा होनेवाले भोग दुखदायी होते हैं । क्योंकि वे कभी होते हैं कभी नष्ट होते हैं । ज्ञानी जन भोगों के सुख को सुख नहीं मानते ।

जो पुरुष इसी लोक में, अपने जीते जी, काम और क्रोध के झटकों को झेलता है, सहता है, वही योगी है और वही सुखी है ।

हे अर्जुन! यज्ञ और तप के भोगनेवाले अधीश्वर, सारे संसार के स्वामी, सब प्राणियों के मित्र, ऐसे परमात्मा को जान कर पुरुष शान्ति को प्राप्त हो जाता है ।

छठा अध्याय

संन्यासी और योगी की पहचान

जो कामों के फलों की इच्छा को छोड़ कर अपने करने लायक़ कामों को करता है वही संन्यासी है और वही योगी है। जिसने अग्नि-होत्र आदि धर्म-कर्मों को छोड़ दिया वह संन्यासी नहीं है।

संन्यास ही योग है

हे पाण्डु के पुत्र, अर्जुन! संन्यास ही को तू योग जान। क्योंकि संन्यास 'छोड़ने' को कहते हैं, इसलिए सङ्कल्पों—इच्छाओं—के बिना छोड़े योगी नहीं हो सकता। इसी लिए हम कहते हैं कि संन्यास और योग एक ही बात है।

यहाँ पर यह सन्देह हो सकता है कि संन्यास तो कामों के त्याग को कहते हैं और योग नाम है कामों के करने का, सो इनमें बराबरी कैसे हो सकती है? पर यह सन्देह ठीक नहीं। क्योंकि कर्मों के ही छोड़ने मात्र को संन्यास नहीं कहते, किन्तु सङ्कल्पों या इच्छाओं के छोड़ने को संन्यास कहते हैं। इसी तरह योग भी वही कहाता है जिसमें ज्ञान-इन्द्रियों को वश में किया

जाय और इच्छाओं को रोका जाय। इन दोनों कामों में वासनाओं को रोकना पड़ता है, इसलिए इनमें कुछ भेद नहीं।

मनुष्य जब विषय और कामों में नहीं फँसता और सब तरह की इच्छाओं को छोड़ देता है तब योगारूढ़ कहाता है। उस समय वह योग के रास्ते पर मज़बूत समझा जाता है।

जो मनुष्य अपने ज्ञान से मन को वश में कर लेता है उसे स्वयं अपना हितकारी समझना चाहिए। और जो अज्ञानी है, मूर्ख है, वह ख़ुद अपना दुश्मन है।

हे अर्जुन! मन को जीतनेवाला और बड़े सीधे स्वभाववाला मनुष्य सरदी-गरमी, सुख-दुख, मान और अपमान के होने पर भी सावधान ही बना रहता है। कभी घबराता नहीं।

हे अर्जुन! पुरुष वही अच्छा समझा जाता है जो इन्द्रियों को जीत लेता है और मिट्टी, पत्थर और सोने को बराबर समझता है तथा मित्र, शत्रु आदि प्राणियों में एक-सी बुद्धि रखता है।

समाधि लगाने की रीति

हे अर्जुन! योगी पुरुष को चाहिए कि मन और आत्मा को अपने अधीन कर, सब तरह की इच्छाओं और ममताओं को छोड़ कर, एकान्त में अकेला बैठे। और बैठ कर चित्त को समाधि में लगावे।

सबसे पहले आसन को ठीक करे। पहले धरती पर कुशा बिछावे, फिर मृगचर्म, और उसके ऊपर कोई कपड़ा बिछा कर ऐसा आसन तैयार करे जो न बहुत ऊँचा हो, न बहुत नीचा।

मतलब यह कि आसन ऐसा होना चाहिए, जिस पर बैठने से सुख मिले ।

जब आसन ठीक हो जाय तब उस पर बैठ कर मन और इन्द्रियों को रोक कर अपने वश में करे, और सुचित होकर अन्तः-करण की शुद्धि के लिए योग का अभ्यास करे । अर्थात् मन को और इन्द्रियों को रोकने का थोड़ा-थोड़ा अभ्यास रोज़ करना चाहिए ।

शरीर, मस्तक और गर्दन को निश्चल करके सीधा रक्खे । इधर-उधर कहीं न देख कर सीधी नाक पर ही नज़र रखनी चाहिए । और फिर मन को रोक कर परमात्मा में लगा दे । यही योग कहाता है ।

इसी तरह करता-करता पूरा ज्ञानी हो जाता है । फिर उसका मन उसके वश में हो जाता है । फिर उसे मोक्ष मिलने में कुछ सन्देह नहीं ।

हे अर्जुन ! जो ज़्यादा भोजन करता है या जो बिलकुल ही भोजन छोड़ देता है, कुछ भी नहीं खाता, जो बहुत सोता है या जो जागता ही रहता है, उसको 'योग' सिद्ध नहीं होता ।

जो ठीक भोजन करता है, ठीक तरह से सोता और जागता है, तथा कामों को ठीक तरह से करता है, उसके सब दुःखों को 'योग' दूर कर देता है ।

हे अर्जुन ! जब रोकने से मन रुक जाता है और किसी तरह की इच्छा नहीं करता तब वह पुरुष योगी कहाने का अधिकारी हो जाता है ।

हे अर्जुन! अपनी सब कामनाओं—इच्छाओं—को छोड़ कर मन से ही इन्द्रियों को सब जगह से रोकना चाहिए। धीरज धर कर बुद्धि को वश में करना चाहिए और मन आत्मा में लगा देना चाहिए। और, किसी बात की चिन्ता नहीं करनी चाहिए।

यह मन बड़ा चञ्चल है। इसका स्वभाव ही ऐसा है कि यह एक जगह नहीं ठहरता। इसलिए जहाँ-जहाँ दौड़ कर मन जाय वहीं-वहीं से रोक कर अपने आत्मा में लगाना चाहिए।

फिर योगी सब प्राणियों में अपने को और अपने में सब प्राणियों को देखने लगता है। मतलब यह कि सब जीवों को वह अपना ही सा समझने लगता है। उसे अपना-पराया कुछ मालूम नहीं होता। वह सब जगह ईश्वर को देखने लगता है।

हे अर्जुन! जो पुरुष समदर्शी हो जाता है अर्थात् सब जीवों को एकसा देखने लगता है वही परमात्मा को देख सकता है और परमात्मा भी उसे ही देखता है। तात्पर्य यह कि समदर्शी योगी को परमात्मा भी अच्छी तरह देखता है। ऐसा पुरुष परमात्मा को भी अच्छा लगता है।

जो पुरुष किसी तरह का भी भेद न समझ कर सब जीवों में परमात्मा ही को देखता है और उसी को भजता है वही सच्चा योगी है।

इतना सुन कर अर्जुन ने पूछा—हे मधुसूदन! अपने बराबर सबको देखना चाहिए—यह जो आपने कहा, सो है तो ठीक, पर मन के चञ्चल होने से यह बात सदा नहीं बनी रह सकती।

हे कृष्ण! यह मन बड़ा ही चञ्चल है। यह इन्द्रियों को गड़-

बड़ा डालता है। यह विचार से भी नहीं जीता जा सकता। मैं तो इसका रोकना हवा की तरह बड़ा कठिन समझता हूँ।

श्रीकृष्ण महाराज बोले—हे महाबाहो! बेशक मन ऐसा ही चञ्चल है। यह बड़ी मुश्किलों से वश में होता है। पर हे कौन्तेय! यह अभ्यास और वैराग्य से वश में किया जा सकता है।

हे अर्जुन! मेरी राय में तो मन के विना जीते योग कभी हो ही नहीं सकता और, जो लोग मन को वश में करने के लिए कोशिश करते रहते हैं उनको योग सिद्ध हो ही जाता है।

अर्जुन ने फिर पूछा—हे कृष्ण! यदि योग करते-करते किसी का मन न रुक सके, वश में न हो सके, तो फिर वह पुरुष योग की सिद्धि को न पाकर किस गति को पाता है? क्या वह कर्म-मार्ग और योगमार्ग से भ्रष्ट हुआ पुरुष नष्ट हो जाता है या नष्ट नहीं होता? मुझे यह बड़ा भारी सन्देह है कि अधूरे योगी की क्या गति होती है। इस सन्देह को आपके सिवा और कोई दूर नहीं कर सकता।

यह सुन कर श्रीकृष्ण ने इस तरह जवाब दिया—हे पार्थ! योगभ्रष्ट पुरुष का नाश नहीं होता। हे तात, अच्छे काम करनेवाले की कभी बुरी गति नहीं होती।

जो पुरुष योगसाधन करता हुआ ही मर जाता है और मन को वश में नहीं कर पाता वह मर कर पुण्य करनेवालों के स्थान को पाता है और सुख भोग कर फिर पवित्र लक्ष्मीवान् के यहाँ जन्म लेता है।

वह या तो लक्ष्मीवान्—धनाढ्य—के यहाँ जन्म लेता है या

किसी बड़े बुद्धिमान् योगी के घर। योगियों के यहाँ जन्म लेना बड़ा भारी काम है। यह बड़े सुकर्मों से मिलता है।

वह योगी के घर जन्म लेकर फिर योग का साधन करता है, फिर मन को वश में करने की कोशिश में लग जाता है।

पहले जन्म में किये योगाभ्यास से उसको मोक्ष मिल ही जाती है। बड़ी भारी कोशिश करते-करते, योग का अभ्यास जब अच्छी तरह हो जाता है तब, पापों को दूर कर, बहुत से जन्मों में इकट्ठे किये योग के द्वारा ज्ञान को पाकर फिर अच्छी गति को पा लेता है।

हे अर्जुन! तप करनेवालों से, ज्ञानियों से, और अग्निहोत्र करनेवालों से भी योगी उत्तम है। इसलिए तू भी योगी बन।

हे अर्जुन! इन योगियों से भी भगवान् का भक्त उत्तम है। जो श्रद्धा से भगवान् को भजता है उसे मैं सबसे अच्छा समझता हूँ।

सातवाँ अध्याय

ज्ञान का वर्णन

हे अर्जुन ! शास्त्रीय-ज्ञान और अनुभव-ज्ञान इन दोनों प्रकार के ज्ञानों को मैं तुझसे कहता हूँ। इसको जान कर फिर संसार में कोई चीज़ जानने को बाकी न रहेगी।

हज़ारों मनुष्यों में (अब तो हज़ारों क्या लाखों-करोड़ों में भी एक नहीं मिलता) कोई एक मनुष्य सिद्धि के लिए कोशिश करता है। और उन सिद्धि चाहनेवालों में भी कोई ही सिद्धि पाता है।

भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहङ्कार यह आठ तरह की प्रकृति है। इसी से सारा संसार रचा गया है पर यह अपरा, अर्थात् छोटे दर्जे की प्रकृति, कहलाती है। इसके सिवा एक प्रकृति और है। वह जीवात्मा है। यह परा अर्थात् उत्तम कहलाती है। मतलब यह कि जगत् में दो ही तरह की चीज़ें हैं—जड़ और चेतन। इन सब प्रकृतियों को सबके पैदा होने की जगह समझनी चाहिए और परमात्मा को इस सारे जगत् का बनानेवाला।

हे अर्जुन ! परमात्मा के सिवा और कोई चीज़ नहीं है। इस

सारे संसार में परमात्मा व्याप्त है। उससे कोई भी चीज़ ख़ाली नहीं।

हे कुन्ती के पुत्र! सूरज और चन्द्रमा में जो उजाला देखते हो वह क्या है तुम जानते हो? वह परमात्मा ही का तो प्रकाश है। वेदों में 'ओंकार', आकाश में शब्द—आवाज़—और पुरुषों में पुरुषार्थ भी परमात्मा ही का अंश है। पृथ्वी में गन्ध, आग में चमक और सब प्राणियों में जीवन भी परमात्मा ही का अंश है और तपस्वियों में तपस्या भी उन्हीं की महिमा समझनी चाहिए।

हे अर्जुन! ईश्वर को सारे संसार का बीज समझ। बुद्धिमानों की बुद्धि और तेजस्वियों का तेज सब परमात्मा ही का रूप है।

हे भारत! इन सब चीज़ों में परमात्मा है और सारे संसार को बनानेवाला भी वही है, पर तो भी वह सबसे अलग है।

ईश्वर की माया बड़ी ज़बरदस्त है। पर जो भगवान् को भजते हैं वे इस माया को भी तर जाते हैं।

हे अर्जुन! जो दुराचारी हैं, मूर्ख हैं, जीवों की हिंसा करनेवाले हैं, झूठ बोलनेवाले हैं, वे अधम—नीच—मनुष्य ईश्वर को नहीं पा सकते।

चार तरह के भक्तों का वर्णन

हे भारतश्रेष्ठ, अर्जुन! ईश्वर के भक्त चार तरह के होते हैं। एक तो आर्त, दूसरा जिज्ञासु, तीसरा धन चाहनेवाला और चौथा ज्ञानी।

मतलब यह निकला कि पहले तीनों से चौथा भक्त अच्छा है। पहले तीन अज्ञानी हैं और चौथा ज्ञानी।

१—जो दुःख में भगवान् को याद करता है और कहा करता है कि हे परमेश्वर! मेरी रक्षा कर, मेरी सुध ले—वह भी एक प्रकार का भक्त ही है।

२—जो अच्छी तरह से ईश्वर का ज्ञान तो रखता नहीं, पर जानने की इच्छा करता है, वह जिज्ञासु कहाता है।

३—तीसरा वह है जो धन या अपने मतलब के लिए परमेश्वर को भजता है।

४—चौथा वह जो ज्ञानी है और जिसे ईश्वर का पूरा ज्ञान है।

हे अर्जुन! इन चारों में वह भक्त उत्तम है जिसका मन परमेश्वर में ख़ूब अच्छी तरह लग गया हो। ज्ञानी को भगवान् में ज़्यादा प्रेम होता है और भगवान् भी उस पर ज़्यादा प्यार करता है।

हैं तो यह चारों ही भक्त परन्तु ज्ञानी भक्त बहुत ही श्रेष्ठ है। क्योंकि वह सब तरह से एक भगवान् ही के सहारे रहा करता है और सिर्फ़ ईश्वर ही में उसका मन ऐसा लगा रहता है कि वह उसी में लीन रहता है।

जब मनुष्य कई जन्मों में अच्छे ही अच्छे काम करता है और ईश्वर की भक्ति भी करता रहता है तब, उसकी ईश्वर में पक्की भक्ति होती है और तभी वह यह समझता है कि भगवान् ही सब कुछ हैं—उन्हीं की भक्ति करनी चाहिए। पर ऐसा भक्त होना है बड़ा कठिन। ऐसा कोई विरला ही होता है।

जब मनुष्य का ज्ञान नष्ट हो जाता है तब वह और-और देवताओं को भजने लगता है (केवल ईश्वर की भक्ति नहीं करता)। ऐसे ऐसे कामों से वह मनुष्य और भी बन्धन में पड़ जाता है।

और-और देवताओं की सेवा-पूजा करनेवाले को जो फल मिलता है वह सदा नहीं रहता। वह फल नाशमान होता है। पर जो पुरुष सिर्फ़ एक ईश्वर ही की भक्ति करता है वह ईश्वर को पा लेता है।

यहाँ पर श्रीकृष्ण के कहने का यही तात्पर्य निकलता है कि सब देवताओं को छोड़ कर एक ईश्वर ही की भक्ति करना उत्तम है। ईश्वर की भक्ति से जो फल मिलता है वह और किसी देवता की भक्ति से नहीं मिलता। इसलिए स्थायी सुख की इच्छा रखनेवालों को एक ईश्वर की ही भक्ति करनी चाहिए और सब जगह से मन को रोक कर परमात्मा में ही लगा देना चाहिए; ऐसा करने पर ही मनुष्य को सुख मिल सकता है और मोक्ष हो सकती है।

हे अर्जुन! ईश्वर न कभी पैदा होता है न मरता है; उसमें कभी किसी तरह का विकार नहीं पैदा होता। पर मूर्ख लोग ऐसे ईश्वर को भी—अजन्मा ईश्वर को भी—जन्म लेनेवाला समझने लगते हैं।

माया के कारण ईश्वर सबको दिखाई नहीं देता। मतलब यह कि अज्ञान से ईश्वर का ज्ञान सबको नहीं हो सकता। जब यह बात है तब मूर्ख लोग यह भी नहीं समझते कि ईश्वर अनादि (जिसका कभी शुरू नहीं) और अविनाशी (जिसका कभी नाश न हो) है।

इन बातों से बिलकुल साफ़ तौर से यही मतलब निकलता है कि ईश्वर कभी जन्म नहीं लेता। इससे ईश्वर का अजन्मा, अनादि और अविनाशी होना सिद्ध होता है।

हे अर्जुन! ईश्वर सबको जानता है और उसे कोई नहीं जानता।

हे भारत! इच्छा करने और द्वेष—वैर—करने से मनुष्य को सुख-दुःख होते हैं। उन्हीं से वह मोह को प्राप्त हो जाता है। पर जिन पुण्यात्मा सज्जनों के पाप दूर हो जाते हैं वे सुख-दुःख से छूट कर परमेश्वर के प्यारे भक्त बन जाते हैं।

जो पुरुष जन्म-मरण के दुःखों से छूटने के लिए भगवान् का भजन करते हैं वे ऐसे ज्ञानी हो जाते हैं कि उन्हें सब बातों का ज्ञान हो जाता है।

आठवाँ अध्याय

"अन्त मता सो मता"

इसके बाद श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा कि हे अर्जुन! जो पुरुष मरते समय परमेश्वर को याद करता है अर्थात् जो ईश्वर को याद करता-करता शरीर छोड़ता है वह ईश्वर को प्राप्त हो जाता है। उसकी मोक्ष हो जाती है।

हे अर्जुन! यही नहीं, मरते समय प्राणी जिसको याद करता है उसीको, मर कर, अगले जन्म में पा लेता है।

पाठक! मरते समय प्राणी की बड़ी बुरी हालत हो जाती है। किसी न किसी बीमारी से वह ऐसा विकल हो जाता है कि उस समय उसे कुछ नहीं सुहाता। और, यदि किसी की बीमारी का ज़ोर कम हुआ और कुछ सुध-बुध बनी रही तो कोई उस समय अपने बेटे को याद करता है, कोई स्त्री को याद करता है, कोई किसी को और कोई किसी को याद करता है। कोई उस समय अपने धन ही की चिन्ता में डूबा रहता है। मतलब यह कि किसी न किसी प्यारी चीज़ में उसका मन ज़रूर ही लग जाता है। ऐसे बहुत ही कम होते हैं जिनका मन उस समय ईश्वर को याद करे। जिसको याद करता हुआ प्राणी मरता है वह मर कर वही हो जाता है। इसलिए मरते समय सिवा ईश्वर के और किसी को

याद करना ठीक नहीं । पर ऐसा होना है बड़ा कठिन । जब तक मनुष्य बचपन से ही ईश्वर में मन नहीं लगाता, उसको याद नहीं करता, तब तक अन्तकाल में ईश्वर का याद आना बड़ा कठिन है । जो पुरुष पहले से ही अपना मन संसारी बातों से हटा कर ईश्वर में लगा देता है, और पहले ही से अपने मन को वश में करने का अभ्यास करता रहता है उसी को अन्तकाल में ईश्वर याद आ सकते हैं । इसलिए अन्तकाल में ईश्वर का स्मरण आने के लिए पहले ही से कोशिश करनी चाहिए । बिना पहले से अभ्यास किये किसी को यह बात नहीं हो सकती ।

हे अर्जुन ! मैं तुझे उपदेश करता हूँ और समझाता हूँ कि निर्भय होकर युद्ध कर । तू सदा भगवान् को याद कर । तू ज़रूर ईश्वर को प्राप्त हो जायगा ।

मन के रोकने से, साधन करते-करते, मनुष्य परमात्मा को प्राप्त हो ही जाता है । इसमें कोई सन्देह नहीं ।

हे अर्जुन ! जो पुरुष अपने मन और इन्द्रियों को रोककर ओंकार को कहता हुआ देह छोड़ता है वह ज़रूर मोक्ष-रूप उत्तम गति को पाता है ।

जिनको मोक्ष हो जाती है उनको फिर जन्म लेना नहीं पड़ता । बात यह कि जिस तरह और प्राणी मरकर जन्म लेते हैं इस तरह मोक्ष का पानेवाला जन्म नहीं लेता ।

हे अर्जुन ! जिस परमेश्वर के भीतर यह सारा जगत् टिका हुआ है, और जो सब जगह व्याप्त हो रहा है उस परम-पुरुष को वही जन पाते हैं जो पूरी भक्ति से उसको याद करते हैं ।

नवाँ अध्याय

सर्वस्व ईश्वरार्पण करने की महिमा

हे अर्जुन! तू बुद्धिमान् और विद्वान् है, इसलिए मैं तुझको सब बातें बतला रहा हूँ। इन सब बातों के जानने से तेरा मोह दूर हो जायगा।

हे भारत! जिन पुरुषों का स्वभाव अच्छा होता है वे सारे प्राणियों के आधार रूप ईश्वर को अविनाशी जानकर भजते हैं। वे सदा उसी की बातचीत, उसी का पूजन और उसी की वन्दना करते हैं। वे सदा भक्ति से उसी की सेवा करते हैं, कोई किसी तरह उसकी पूजा करते हैं, कोई किसी तरह।

हे अर्जुन! वह ईश्वर सारे जगत् का पिता है। वही सारे जगत् का पालन करनेवाला है। वही सबका पैदा करनेवाला और धारण करनेवाला है। वही सबके जानने योग्य है और ओंकार-रूप भी वही है। वह सब की गति—सहारा—, पालन-पोषण करनेवाला, स्वामी, साक्षी, सबके सब कामों को देखनेवाला, सबका निवासस्थान, सबका रक्षक, सुहृद, पैदा करनेवाला, नाश करनेवाला, आधार और अविनाशी है।

हे अर्जुन! ईश्वर ही सूर्य्यरूप से तपता है। वही पानी को धरती पर से सोख लेता और वही बरसाता है। वही सब कुछ करता है।

जो लोग कर्मकाण्डी होते हैं, यज्ञ आदि करते हैं, वे यज्ञों के करने से स्वर्ग को प्राप्त होते हैं। पर, स्वर्ग-सुख भोग लेने के बाद उनको फिर संसार में ही आना पड़ता है। जो फिर वह अच्छे काम करते हैं तो फिर सुख भोगने लगते हैं। पर यह सुख थोड़े ही दिनों के लिए होता है। यह बहुत काल तक नहीं रहता। बहुत काल रहनेवाला तो मोक्ष-सुख ही है।

जो लोग ईश्वर ही में मन लगा कर उसे याद करते हैं, उसको भजते हैं, उनके सब काम ईश्वर सिद्ध कर देता है।

हे कौन्तेय! जो कुछ तू करता है, खाता है, हवन करता है, दान करता और तप करता है वह सब ईश्वर को अर्पण कर दे। मतलब यह कि तू अपने ही लिए काम मत कर। जो करे सो सब ईश्वर को सौंप दे। ऐसा करने से तू अच्छे और बुरे फलों से बच जायगा और अन्त को तेरी मोक्ष हो जायगी।

ईश्वर के लिए सब जीव बराबर हैं। उसका न कोई प्यारा है न वैरी। पर जो उसकी सेवा करते हैं वे ईश्वर को अधिक प्यारे लगते हैं। क्योंकि वे उसका कहा मानते हैं।

जो पापी पुरुष कभी ईश्वर का भजन करने लगे तो उसे भी अच्छा ही समझना चाहिए। क्योंकि वह कुमार्ग से सुमार्ग में चलने लगता है। स्त्री हो या पुरुष, कोई किसी वर्ण का क्यों न हो, जो ईश्वर को भजता है वही उत्तम गति पाता है। ईश्वर किसी के उच्च और नीच कुल को नहीं देखता। वह तो भक्ति को देखता है। और जो पुण्य काम करनेवाले ब्राह्मण या राजे लोग

ईश्वर का भजन करें तो फिर उनका क्या कहना । हे अर्जुन! इस मनुष्य-शरीर को पाकर तू भलाई चाहे तो ईश्वर को भज ।

हे अर्जुन! तू ईश्वर ही में चित्त लगा, उसी का भक्त बन, उसी की पूजा कर और उसी को नमस्कार कर । इस तरह ईश्वर में मन लगाने से, उसके अधीन हो जाने से, उसी को प्राप्त हो जायगा ।

दसवाँ अध्याय

भगवान् की विभूतियों का वर्णन

इतना कह चुकने पर श्रीकृष्ण ने अर्जुन से फिर कहा—हे अर्जुन ! मैं तुझ पर प्रसन्न हूँ। इसलिए मैं तेरी भलाई के लिए फिर भी कुछ कहता हूँ। तू जी लगा कर सुन।

हे अर्जुन ! जो ईश्वर को अजन्मा, अनादि और सारे लोकों का मालिक जानता है वह मोह-रहित होकर सब पापों से छूट जाता है।

परमात्मा ही सबको पैदा करता है और उसी से सब कुछ पैदा होता है—यही जानकर ज्ञानी लोग परमेश्वर को मन लगाकर भजते हैं।

सज्जन और ज्ञानी लोग सदा ईश्वर ही में मन लगाकर आपस में वेदमन्त्रों से ईश्वर का ही विचार करते और उसी की बातचीत किया करते हैं। वे परमेश्वर के ही कीर्तन में मगन रहा करते हैं।

जो मनुष्य धर्मानुसार काम करता हुआ ईश्वर का भजन करता है उसकी बुद्धि सुधर जाती है। ईश्वर उसकी बुद्धि को ऐसा कर देता है जिससे वह परमात्मा को पा लेता है। मतलब

यह कि भक्त की बुद्धि को परमात्मा शुद्ध कर देता है जिससे उसकी बुद्धि भजन में सदा लगी रहती है ।

अपने भक्तों के ऊपर दया करके भगवान् ज्ञानरूप दीपक को जलाकर अज्ञानरूप अन्धकार को दूर कर देते हैं । मतलब यह कि जो लोग भगवान् का भजन करते हैं, उनकी आज्ञाओं का पालन करते हैं उनका अज्ञान मिट जाता है और उनके हृदय में ज्ञान का प्रकाश हो जाता है ।

इस तरह ईश्वर की महिमा को सुनकर अर्जुन के हृदय में भगवान् की भक्ति का समुद्र उमड़ आया । वह ईश्वर की भक्ति में लीन होकर भगवान् की स्तुति करने लगा । वह कहने लगा—

हे परब्रह्म ! आप परमधाम और परमपवित्र हैं । सब ऋषि लोग आपको नित्य, दिव्य, आदिदेव, जन्मरहित और सर्वव्यापक कहते हैं । हे परमात्मन् ! आपकी महिमा को, आपके स्वरूप को, न देवता ही अच्छी तरह जानते हैं और न दैत्य ही । भगवन् ! आपकी महिमा अपार है । उसे कोई नहीं जानता । हे पुरुषोत्तम, हे प्राणियों के पैदा करनेवाले, हे सबके स्वामी, हे प्रकाशकों के प्रकाशक, हे जगन्नाथ ! आपकी महिमा को आप ही स्वयं अच्छी तरह जानते हैं । दूसरा कोई नहीं जान सकता ।

इतना कह चुकने पर अर्जुन ने श्रीकृष्ण से फिर पूछा कि हे योगिराज ! आप पूरे ज्ञानी हैं इसलिए आप कृपा करके यह बतलाइए कि किन चीज़ों में परमात्मा की महिमा अधिक दिखाई देती है । आप ईश्वर की विभूतियों का वर्णन कीजिए । क्योंकि आपकी बातें

मुझे बड़ी प्यारी लगती हैं। आपकी बातें सुनते-सुनते मेरा मन नहीं भरता।

यह सुन कर श्रीकृष्ण महाराज ने कहा—हे कुरुश्रेष्ठ! ईश्वर की विभूतियों की कोई गिनती नहीं। वे बेशुमार हैं। पर मैं उनमें से मुख्य-मुख्य थोड़ी सी विभूतियों का वर्णन करता हूँ। सुनो—

हे गुड़ाकेश*! सब प्राणियों में रहनेवाला ईश्वर ही का रूप है। सबका आदि, मध्य और अन्त वही परमात्मा है। बारह आदित्यों में विष्णु, प्रकाशकों में सूर्य, और नक्षत्रों में चन्द्रमा, ये सब ईश्वर की विभूतियाँ हैं। इनमें ईश्वर की महिमा का अधिक बोध होता है। इनमें ईश्वर का अंश अधिक विद्यमान है।

वेदों में सामवेद, देवों में इन्द्र, इन्द्रियों में मन, और सब प्राणियों में जो चेतनता है वह भी परमात्मा की विभूति है।

ग्यारह रुद्रों में शङ्कर, यक्ष और राक्षसों में कुबेर, आठ वसुओं में अग्नि, और पर्वतों में सुमेरु पर्वत, ये सब उसी परमात्मा की महिमा को जता रहे हैं।

हे पार्थ! पुरोहितों में बृहस्पति, सेनापतियों में स्वामिकार्त्तिक, और जलाशयों में समुद्र, परमात्मा के विशेष द्योतक हैं।

महर्षियों में भृगु, वचनों में 'ओं'-कार, यज्ञों में जप-यज्ञ, और स्थिर पदार्थों में हिमालय पर्वत, ईश्वर की विभूति है।

सब पेड़ों में पीपल, देवर्षियों में नारद, गन्धर्वों में चित्ररथ, और सिद्धों में कपिलमुनि ईश्वर की विभूति है।

---

* 'गुड़ाका' नींद को कहते हैं और 'ईश' स्वामी को, अर्थात् नींद को जीतनेवाला। अर्जुन ने नींद को जीत रक्खा था।

घोड़ों में उच्चैःश्रवा, हाथियों में ऐरावत, और मनुष्यों में राजा परमात्मा की विभूति है ।

दैत्यों में प्रह्लाद, गिननेवालों में काल, मृगों में सिंह और पक्षियों में गरुड़ भगवान् की विभूति समझनी चाहिए ।

पवित्र करनेवालों में हवा, शस्त्रधारियों में दशरथ के पुत्र रामचन्द्र, जलचरों में मगर और नदियों में गङ्गा भगवान् की विभूति है ।

अक्षरों में 'अ'-कार, समासों में द्वन्द्वसमास, कभी नाश न होनेवाला काल, और सब के कर्मफल को देनेवाला विधाता ईश्वर ही की विभूति है ।

सबको मारनेवाला मृत्यु, कीर्ति, लक्ष्मी, वाणी, स्मृति, बुद्धि, धारणा-शक्ति, और क्षमा ये सब परमात्मा की विभूति हैं ।

सामगायनों में बृहत्साम, छन्दों में गायत्री, महीनों में मग-सिर, और ऋतुओं में वसन्त ऋतु ईश्वर की विभूति है ।

तेजधारियों में तेज, जय, उद्योग और सात्त्विकों में सत्त्व भग-वान् की विभूति है ।

यदुवंशियों में वासुदेव अर्थात् वसुदेव का पुत्र (मैं श्रीकृष्ण), पाण्डवों में धनञ्जय अर्थात् अर्जुन, मुनियों में व्यास, और कवियों में शुक्र भगवान् की विभूति है ।

दमन करनेवालों में दण्ड, शत्रु जीतने की इच्छा करनेवालों में नीति, छिपाने योग्य चीज़ों में मौन (चुप रहना), और ज्ञानियों में ज्ञान ईश्वर की विभूति है ।

हे अर्जुन ! कहाँ तक कहें, सारे प्राणियों का जो कुछ बीज

अर्थात् कारण हैं वह सब ईश्वर की विभूति है। ऐसी कोई चीज़ संसार में नहीं है जो ईश्वर के बिना हो अर्थात् ईश्वर सब चीज़ों में मौजूद है।

हे अर्जुन! ईश्वर की विभूतियों का अन्त नहीं। यह जो मैंने उनका कुछ वर्णन किया है सो तो सिर्फ़ दिग्दर्शन के लिए किया है।

हे अर्जुन! जो-जो चीज़ सुन्दर और अच्छी मालूम होती है और चमत्कारी दिखाई देती है वह सब परमात्मा की विभूति समझनी चाहिए। उसे परमात्मा के तेजांश से पैदा हुई समझनी चाहिए। हे अर्जुन! बहुत कहने से क्या, ईश्वर इस सारे जगत् में व्याप्त हो रहा है।

ग्यारहवाँ अध्याय

भगवान् की महिमा

अर्जुन ने कहा—हे कमलनयन ! मेरे ऊपर कृपा करने के लिए जो आपने ऐसा उत्तम उपदेश और ज्ञान का वर्णन किया सो उससे मेरा मोह दूर हो गया। मैंने आपसे सारे चराचर जगत् का जन्म और नाश का वर्णन सुना। और ईश्वर की मुख्य-मुख्य विभूतियों का वर्णन भी मैंने आपसे सुना। अब मेरा अज्ञान जाता रहा।

श्रीकृष्ण बोले—हे अर्जुन ! ईश्वर ही जगत् को पैदा करता है और वही मार डालता है। जो तू इनके साथ युद्ध न करेगा तो भी ये तो मरेंहीगे। इसलिए तू उठ; शत्रुओं को मार; कीर्ति प्राप्त कर और राज्य को भोग।

हे सव्यसाचिन्* ! यह सब तो अपने कर्मों से आप ही मरे हुए हैं। ईश्वर ने इन्हें पहले ही मार रक्खा है। तू तो इनके मरने में निमित्त मात्र हो जा।

काल से मारे हुए द्रोण, भीष्म, जयद्रथ, कर्ण और अनेक

---

* जो बायें हाथ से भी बाण चला सके उसे सव्यसाची कहते हैं। अर्जुन सीधे हाथ की तरह बायें हाथ से भी बाण चलाता था।

शूरवीरों को तू मार। तू खेद मत कर, युद्ध कर। मुझे भरोसा है, तू युद्ध में शत्रुओं को जीत लेगा।

यह सुन कर अर्जुन फिर भगवान् की स्तुति करने लगा। वह हाथ जोड़ कर बड़े गद्गद स्वर से बोला—हे हृषीकेश! आपकी कीर्ति से सारा जगत् प्रसन्न हो जाता है। आपकी कीर्ति को सुन कर राक्षस लोग मारे डर के जहां-तहाँ भाग जाते हैं। सब सिद्ध लोग आपको नमस्कार करते हैं।

हे महात्मन्, हे अनन्त, हे देवों के ईश, हे जगन्निवास! आप सबसे महान्—बड़े—हैं। आप सबके पैदा करनेवाले हैं। आप अविनाशी हैं। आपका नाश कभी नहीं होता।

हे अनन्तदेव! आप आदिदेव, पुराणपुरुष, इस संसार के लय होने के स्थान, महाज्ञानी, जानने योग्य और परमधाम हैं। आपसे यह सारा संसार व्याप्त हो रहा है। वायु, यम, अग्नि, वरुण, चन्द्रमा, ब्रह्मा और ब्रह्मा के पिता आप ही हैं। आपको हज़ार बार नमस्कार है।

हे सर्वस्वरूप! आपका पराक्रम और आपका सामर्थ्य अनन्त है। आप सारे जगत् में रम रहे हैं। इसलिए आप सर्व हैं, सर्वस्वरूप हैं और सर्वात्मक तथा सर्वव्यापक हैं।

इतना कह चुकने पर अर्जुन ने फिर श्रीकृष्ण से कहा—हे महामहिम! आपकी महिमा को न जानकर मैंने आपको सखा समझा और, 'हे कृष्ण, हे यादव, हे सखे,' ऐसा जो तिरस्कार से कहा सो प्रीति से ही कहा। हे श्रीकृष्ण! मैं इन सब बातों के लिए आपसे क्षमा माँगता हूँ। खाने, पीने, उठने, बैठने और

सोने में जो कुछ आपके साथ मैंने अनुचित व्यवहार किया हो, उसको भी आप कृपा कर क्षमा कीजिए।

आप हमारे पूज्य हैं, गुरु हैं, बड़े हैं। इस लोक में आपके समान भी कोई नहीं, ज़्यादा होने की तो बात ही क्या?

इसलिए मैं अपना सिर झुकाकर आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप मुझ पर दया करें। हे देव! जिस तरह पिता पुत्र के, मित्र मित्र के और पति प्यारी स्त्री के वचनों को क्षमा कर देते हैं उसी तरह आप भी मेरे अपराधों को क्षमा कीजिए।

अर्जुन की प्रार्थना को सुनकर श्रीकृष्ण प्रसन्न हो गये। उन्होंने कहा कि हे परन्तप अर्जुन! ईश्वर एक भक्ति से ही जाना जा सकता है और भक्ति से ही वह मिल सकता है।

हे पाण्डव! जो ईश्वर का प्रेमी भक्त ईश्वर के ही लिए सब काम करनेवाला हो और ईश्वर ही पर पूरा भरोसा रखता हो, निःसङ्ग रहता हो और सारे जीवों से मिलकर रहता हो, अर्थात् किसी से भी वैर न रखता हो, तो वह महात्मा ईश्वर को पा सकता है।

बारहवाँ अध्याय

उत्तम भक्त के लक्षण

यह सुन अर्जुन ने कहा—हे श्रीकृष्ण! ईश्वर को सगुण मानकर भजन करनेवाला भक्त अच्छा है या निर्गुण मानकर भजन करनेवाला? इन दोनों तरह के भक्तों में कौन अच्छा है—यह आप मुझसे कहिए।

श्रीकृष्ण महाराज ने कहा—हे अर्जुन! जो लोग श्रद्धा-भक्ति से ईश्वर को भजते हैं वे उत्तम योगी हैं। मेरी राय में सगुण का भजन करनेवाला भक्त उत्तम है। पर जो इन्द्रियों को अपने अधीन करके सब जगह बराबर भाव, बराबर बुद्धि रखनेवाले, सब प्राणियों का भला चाहनेवाले भक्त हैं, वे भी ईश्वर को ही प्राप्त हो जाते हैं। अर्थात् निर्गुण-उपासना करनेवालों को भी वही फल मिलता है जो सगुण-उपासक को मिलता है।

पर भेद इतना ही है कि निर्गुण-उपासना करनेवाले को बहुत दुःख उठाने पर, बड़े परिश्रम से, ईश्वर की प्राप्ति होती है, और सगुण-उपासक को उतनी मेहनत नहीं पड़ती।

जो लोग स्वार्थ छोड़कर काम करते हैं और जो कुछ करते हैं सब ईश्वर को सौंप देते हैं, ऐसे भक्तों को ईश्वर संसार-सागर से जल्द पार उतार देता है।

हे अर्जुन! तू भी ईश्वर में मन लगा; उसी की भक्ति कर। ऐसा करने पर तू भी ज़रूर ईश्वर को पा लेगा। यदि अभी तेरे चित्त की वृत्ति ईश्वर में न लग सकती हो तो हे धनञ्जय! तू अभ्यास कर। अभ्यास करने से तेरा मनोरथ पूरा हो जायगा। हे अर्जुन! यदि तू अभ्यास भी न कर सके, तो ईश्वर ही के लिए सब काम कर। अर्थात् सब कामों में से अपनी इच्छाओं को हटा ले। ऐसा करने से भी तू मोक्ष पा सकेगा।

यदि यह काम भी तुझसे न हो सके तो मन को रोककर एक ईश्वर को ही याद कर, ईश्वर के ही सहारे रह, और कामों के फलों की इच्छा को छोड़कर काम कर।

हे अर्जुन! अभ्यास बड़ी चीज़ है। पर अभ्यास से ज्ञान, ज्ञान से ध्यान, और ध्यान से कर्म-फल का त्याग उत्तम है। इस कर्म-फल के छोड़ने से जल्द शान्ति मिल जाती है।

हे अर्जुन! वह भक्त मुझे सबसे प्यारा लगता है जो किसी से वैर न करे, सबसे मित्रता का वर्त्ताव करे, दयालु हो, और ममता से अलग हो; वह भक्त मुझे बहुत प्यारा लगता है जो अहङ्कार से रहित हो, सुख-दुख को समान समझता हो, शान्त हो, हर हालत में प्रसन्न रहता हो, मन को वश में रखता हो, स्थिरचित्त हो और ईश्वर ही में मन लगानेवाला हो।

जिससे किसी जीव को डर न हो, और जो किसी से न डरे और जिसे हर्ष न हो, दूसरे के सुख को देखकर जिसे दुख न हो, डर न हो, और जो कभी किसी काम से घबरावे नहीं—ऐसा भक्त मुझे बड़ा प्यारा लगता है।

जो मिले उसी में सन्तुष्ट रहनेवाला, पवित्र रहनेवाला, पक्ष-पात-रहित, खेद न माननेवाला, और फल की वासना को छोड़-कर काम करनेवाला भक्त मुझे बहुत प्यारा है।

जो पुरुष प्यारी चीज़ के मिलने पर प्रसन्न न हो, किसी से वैर न करे, प्यारी चीज़ के न मिलने पर जिसे शोक न हो, किसी चीज़ का लोभ न हो, और अच्छे-बुरे सब तरह के कामों को छोड़नेवाला हो, वह मुझको प्यारा है।

जो शत्रु, मित्र, बड़ाई और बुराई को एकसा समझता हो; सर्दी-गर्मी, सुख-दुख को बराबर समझता हो; किसी का संग न करता हो; जो कुछ मिले उसी में सन्तुष्ट रहता हो, एक ही जगह न रहता हो, स्थिर-बुद्धि हो और ईश्वर में पूरी भक्ति रखता हो, वह मुझे बहुत प्यारा है।

हे अर्जुन! जो मनुष्य ईश्वर को ही सब कुछ मानकर उसकी आज्ञाओं का पालन करता है, और उसके बताये हुए धर्म पर चलता है, वह मुझे बहुत ही प्यारा लगता है।

तेरहवाँ अध्याय

जड़-चेतन-विज्ञान

श्रीकृष्ण ने फिर कहा—हे अर्जुन! इस शरीर को शास्त्र के जाननेवाले लोग 'क्षेत्र' कहते हैं और जो इसको जानता है, उसे 'क्षेत्रज्ञ' कहते हैं।

हे कौन्तेय! तू मुझे क्षेत्रज्ञ समझ। मैं इन सब बातों को अच्छी तरह जानता हूँ। यह क्षेत्र—शरीर—जिस तरह का है, जिन विकारों से मिला हुआ है, जिससे पैदा होता है, जैसा है और जिन प्रभावों से युक्त है, यह सब संक्षेप से मैं तुझसे कहता हूँ; सुन। पाँच महाभूत*, अहङ्कार, बुद्धि, अव्यक्त, ग्यारह इन्द्रियाँ, इन्द्रियों के विषय, इच्छा, द्वेष, सुख, दुख, देह, चेतना, और धीरज, ये संक्षेप से क्षेत्र और क्षेत्र के विकार हैं।

अभिप्राय का न होना, कपट न होना, हिंसा† न करना, शान्ति का रहना, सीधापन, गुरु की सेवा, सफ़ाई से रहना, अपने शरीर को क़ाबू में रखना, इन्द्रियों के विषय का छोड़ना, अहङ्कार का छोड़ना; पैदा होने में, मरने में, बुढ़ापे में, बीमारी में और

---

* पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश।

† किसी जीव को मारना या किसी तरह दुःख देना।

दुख में बुराई देखना; पुत्र, स्त्री, घर आदि से मन को अलग करना; उनके सुख-दुखों में बहुत मन न लगाना, प्यारी या कुप्यारी चीज़ में एकसा रहना, ईश्वर में निरंतर भक्ति रखना, चित्त को प्रसन्न करनेवाले पवित्र देश में बसना, संसारी काम-धन्धों में फँसे रहनेवाले लोगों से अलग रहना; जीव, माया और ईश्वर का जानना, उसी का सदा विचारना और मोक्ष के लिए सदा चेष्टा करना; यह सब ज्ञान कहलाता है। इसके अलावा अज्ञान है।

जिसको जानकर मनुष्य को मोक्ष हो जाती है, उस जानने लायक़ चीज़ को मैं कहता हूँ; सुन। वह अनादि परब्रह्म है और सत्-असत् से अनोखा है।

उस अनादि परब्रह्म के चारों ओर हाथ हैं, चारों ओर पाँव हैं, चारों ओर आँखें हैं, चारों ओर सिर हैं, चारों ओर मुँह हैं, और चारों ओर कान हैं। वह सब जगह है। कोई जगह ऐसी नहीं जहाँ वह न हो। मतलब यह कि वह सारे संसार को थामे हुए है, सबको देखता है और सबकी बातें सुनता है।

वह सब इन्द्रियों के गुणों का देनेवाला है, पर आप ऐसा होकर भी, इन्द्रियों से रहित है। सङ्गरहित होकर भी वह सारे ब्रह्माण्ड—आकाश, पृथ्वी आदि कुल—को धारण कर रहा है। वह सब गुणों से अलग है; पर उनका भोगता स्वामी है।

हे अर्जुन! वह सब जीवों के बाहर और भीतर रहता है। वह बहुत ही सूक्ष्म—बारीक—है, इसलिए उसे कोई जान नहीं सकता। वह दूर भी है, पास भी। मतलब यह कि वह हमारे पास भी है और दूर भी अर्थात् सब जगह है।

उसके टुकड़े नहीं हो सकते, पर सब जीवों में वह बँटा हुआ-सा मालूम होता है। वही परमात्मा सारे जीवों को पैदा करता है, वही सबका पालन-पोषण करता है और वही सबका संहार करता है।

वह सूर्य्य और चन्द्रमा आदि चमकीली चीज़ों का भी प्रकाशक है—अर्थात् ये चमकती चीज़ें भी उसी से चमक पाती हैं। वह अन्धकार से परे अर्थात् प्रकाश-स्वरूप है। वही ज्ञान है, वही जानने योग्य चीज़ है और वही ज्ञान से मिलनेवाला है और सब के हृदय में टिका हुआ है।

हे अर्जुन! क्षेत्र (शरीर), ज्ञान और ज्ञेय (ईश्वर) का वर्णन मैंने तुझसे कर दिया। इन सब बातों को जानकर मनुष्य परमपद को पाता है।

हे अर्जुन! अब प्रकृति और पुरुष का ज्ञान सुन। प्रकृति जड़ चीज़ों का नाम है और पुरुष चेतन को कहते हैं। पृथ्वी, जल, वायु और इनके और बहुत से विकार और ऐसी ही और भी बहुत सी चीज़ें प्रकृति कहलाती हैं। प्रकृति और पुरुष ये दोनों ही अनादि हैं। ये सदा से ऐसे ही चले आये हैं। शरीर, इन्द्रियाँ, सुख, दुख, मोह आदि परिणाम ये सब प्रकृति से ही पैदा होते हैं। इसी लिए ये प्रकृति के विकार कहे जाते हैं।

शरीर को और इन्द्रियों को प्रकृति ही पैदा करती है। यह चेतन पुरुष, जिसे जीवात्मा भी कहते हैं, सुख-दुखों का अनुभव करनेवाला है। अर्थात् इन्द्रियों के फलों को यह भोगता है।

प्रकृति में रहकर यह पुरुष प्रकृति से पैदा हुए गुणों को

भोगता है। प्रकृति के गुणों से ही यह पुरुष ऊँच या नीच योनि में जन्म लेता है।

इस देह में रहकर यह पुरुष भर्ता, भोक्ता और परमपुरुष कहलाता है।

हे अर्जुन! इस तरह गुणों के साथ प्रकृति और पुरुष को जाननेवाला मनुष्य संसार में रहता हुआ भी जन्म-मरण से छूट जाता है।

हे अर्जुन! कोई तो सांख्ययोग-द्वारा समाधि में मगन होकर आत्मा को जान लेते हैं और कोई कर्मयोग-द्वारा जान लेते हैं। पर कोई, जो इन दोनों बातों को नहीं जानते वे, दूसरों से सुन-कर उपासना करते हैं और दूसरों से उपदेश सुन-सुनकर मृत्यु से तर जाते हैं।

हे भरतवंशी अर्जुन! संसार में जो कुछ चर और अचर चीज़ें दिखाई देती हैं वे सब क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के मिलने से ही पैदा होती हैं।

जो परमेश्वर को सारे भूतों में, सारी चीज़ों में, वर्तमान देखता है और भूतों के नष्ट हो जाने पर भी परमात्मा को ज्यों का त्यों बना हुआ देखता है, वही देखता है अर्थात् वही ज्ञानी है।

मतलब यह कि ईश्वर सब जगह, सब चीज़ों में, व्याप्त है और चीज़ों के नष्ट हो जाने पर भी ईश्वर नष्ट नहीं होता। वह ज्यों का त्यों ही बना रहता है। जो सब जगह परमात्मा को देखता है उसकी मोक्ष हो जाती है।

जो ज्ञानी यह समझ लेता है कि प्रकृति से ही सारे काम हो

रहे हैं, आत्मा कुछ नहीं करता अर्थात् वह अकर्ता है—वही ठीक है। वही ईश्वर को देखता है।

जो मनुष्य अलग-अलग सब चीज़ों को परमेश्वर में एक ही रूप से टिकी हुई देखता है और उसी से सबको पैदा हुआ जानता है वह ब्रह्म को पा लेता है।

हे कुन्ती के पुत्र अर्जुन! परमात्मा अविनाशी और अनादि है। इसलिए शरीर में टिका हुआ भी परमात्मा न तो कुछ करता है और न कर्मबन्धनों से बँधता है।

यह आत्मा शरीर में टिका तो रहता है पर उसके दोषों का इस पर कुछ असर नहीं होता। यह उनसे अलग रहता है।

हे अर्जुन! जिस तरह एक ही सूर्य सारे संसार में प्रकाश करता है उसी तरह क्षेत्री—परमात्मा—भी इस शरीर को प्रकाशित कर देता है। अर्थात् ईश्वर ही के प्रभाव से यह अपने काम करने को समर्थ होता है।

हे अर्जुन! इस तरह इन सब बातों को और अविद्या रूप अन्धकार के दूर करने के उपाय को जानने से मनुष्य परमपद पा सकता है।

चौदहवाँ अध्याय

प्रकृति के तीनों (सत्व, रज, तम) गुणों का वर्णन

श्री कृष्णचन्द्र महाराज फिर बोले—हे अर्जुन ! मैं फिर तुमको उत्तम ज्ञान का उपदेश करता हूँ। ऐसे ज्ञान का कि जिसको जानकर मुनि लोग इस देह-बन्धन को तोड़ कर मोक्ष पा लेते हैं।

इस ज्ञान ही के प्रभाव से ज्ञानी लोग ईश्वर को पाकर फिर संसार में जन्म नहीं लेते। उनको जीने-मरने का फिर दुःख उठाना नहीं पड़ता।

हे भारत ! इस सारे जगत् को एक परब्रह्म परमात्मा ही धारण करता है। उसे सारे जगत् का धारक समझना चाहिए।

हे कौन्तेय ! सब योनियों में जितने शरीर दिखाई देते हैं वे सब परमात्मा से ही पैदा होते हैं। उन सबके पैदा होने का स्थान ब्रह्म ही है। उन सबका बीज परमात्मा ही है।

हे लम्बी भुजाओंवाले अर्जुन ! प्रकृति से तीन गुण या तीन बातें पैदा होती हैं—१ सत्व, २ रज, ३ तम। यही तीनों बातें देह में रहनेवाले इस निर्विकार जीवात्मा को बाँध लेती हैं। अर्थात्

इन्हीं तीनों के कारण इसे जन्म धारण करना पड़ता है, और इन्हीं के कारण इसे सुख, दुःख और मोह होता है।

हे पापरहित, अर्जुन ! इन तीनों गुणों में सत्व गुण अच्छा है। यह ज्ञान का प्रकाश करता है। इसलिए यह देही को सुख और ज्ञान के लालच से बाँधता है।

हे कौन्तेय ! तृष्णा (न मिली हुई चीज़ में इच्छा) और व्यासङ्ग (मिली हुई वस्तु में अधिक प्रीति) से पैदा होनेवाले रजोगुण को तू रागात्मक जान। क्योंकि रजोगुण ही मनुष्य को काम करने के लिए उभाड़ा करता है। यही गुण तरह-तरह के कामों में फँसाया करता है। इसलिए यह रजोगुण भी कर्मों से देही को बाँध डालता है।

हे भरतकुलावतंस अर्जुन ! सारे प्राणियों पर अज्ञान का परदा डालनेवाला तमोगुण है। यह अज्ञान से पैदा होता है। यह प्रमाद, आलस्य और नींद से जीवात्मा को बाँध डालता है। यह तीनों में सबसे नीच गुण है।

हे भारत ! सत्वगुण के उदय होने से सुख होता है और रजोगुण से कर्म करने में प्रवृत्ति। और तमोगुण तो ऐसा बुरा है कि वह चारों ओर से ज्ञान को तो रोक लेता है और जीवात्मा को प्रमादी और आलसी बना डालता है। प्रमादी और आलसी बनकर इस प्राणी को तरह-तरह के दुःख उठाने पड़ते हैं।

हे भारत ! सत्वगुण शेष दोनों गुणों को दबाकर उभड़ता है। इसी तरह जब रजोगुण बढ़ता है तब और दोनों गुण दब जाते हैं। और, तमोगुण के बढ़ने से सत्वगुण और रजोगुण दबे रहते हैं।

हे अर्जुन ! अब इन तीनों की अलग-अलग पहचान सुनो। जब सारी इन्द्रियाँ ज्ञानरूप प्रकाश से प्रकाशित होती हैं, अर्थात् जब प्राणी को अच्छी तरह ज्ञान होता है तब, सत्वगुण की प्रकृति की विशेष वृद्धि समझनी चाहिए। मतलब यह निकला कि जिस समय मनुष्य ज्ञान की बातें करता है उस समय उसकी प्रकृति सत्व-गुण की समझनी चाहिए। सत्वगुण के बढ़ने से ही मनुष्य को ज्ञान होता है।

हे भरतर्षभ ! जब रजोगुण अधिक बढ़ जाता है तब इस प्राणी को लोभ बढ़ जाता है और तरह-तरह के काम करने की इच्छा पैदा हो जाती है। तब यह तरह तरह के काम आरम्भ करने लगता है; अशान्ति होने लगती है; चीज़ों में तृष्णा अधिक बढ़ जाती है। मतलब यह कि जब लोभ अधिक बढ़ने लगे, तरह-तरह के काम करने को जी करने लगे, और चीज़ों में बड़ी भारी तृष्णा बढ़ने लगे तब समझना चाहिए कि अब रजोगुण की बढ़ती है।

हे कुरुनन्दन ! जब तमोगुण बढ़ता है तब ज्ञान का नाश हो जाता है। उद्योग नष्ट होकर स्वभाव में आलस बढ़ जाता है। ज़रूरी करने लायक़ काम में भूल होने लगती है, और मोह बहुत ज़्यादा बढ़ने लगता है।

हे अर्जुन ! जब यह देही सत्वगुण के उदयकाल में मर जाता है तब मरकर यह अच्छे लोक में जाकर जन्म लेता है। मतलब यह कि मरते समय यदि सत्वगुण अधिक बढ़ा होता है तो मनुष्य मरकर अच्छे लोक में जन्म पाता है। और जो रजोगुण की

बढ़ती के समय मरता है वह ऐसी जगह जन्म पाता है जहाँ काम करने का अधिक सामान हो। तमोगुण का भी यही हाल है। तमोगुण के उदय-काल में मरकर अज्ञानियों में अर्थात् पशु आदि की योनि में जन्म लेता है।

हे अर्जुन! थोड़े से में यह समझना चाहिए, कि सत्वगुण का सुख, रजोगुण का दुख और तमोगुण का अज्ञान फल मिलता है।

दूसरी तरह से इसका मतलब यह समझना चाहिए कि सत्वगुण से ज्ञान, रजोगुण से लोभ और तमोगुण से प्रमाद, मोह और अज्ञान पैदा होते हैं।

सत्वगुणवाले जन उत्तम गति को पाते हैं और रजोगुणवाले मध्यम गति को। तमोगुणवाले—नींद और आलस में पड़े रहने-वाले—नीच गति को पाते हैं।

जो लोग शरीर से पैदा होनेवाले प्रकृति के तीनों गुणों (सत्व, रज, तम) को जीत लेते हैं वे जन्म, मरण, बुढ़ापे और रोग से छूट जाते हैं और मोक्ष पा लेते हैं।

यह सुन अर्जुन ने पूछा—हे प्रभु! किन बातों से ज्ञानी जन इन तीनों गुणों को जीत सकते हैं? इनके जीतने के लिए क्या काम करना चाहिए? कृपा कर यह बतलाइए, कि ये तीनों गुण किस तरह जीते जाते हैं।

श्रीकृष्णचन्द्र भगवान् ने कहा—हे पाण्डव! सत्वगुण का फल ज्ञान, रजोगुण का कामों में प्रवृत्ति, और तमोगुण का मोह है। इन सब बातों के होने पर जो न घबरावे और न होने पर इनकी इच्छा न करे वह गुणातीत (गुणों से अलग) कहलाता है।

जो मनुष्य सुख-दुख को बराबर जानता है और किसी गुण के वश में नहीं होता, और 'गुण अपने कामों में आप ही लगे रहते हैं'—यह सोचकर जो सावधान रहता है, किसी तरह की चेष्टा नहीं करता, वह गुणातीत है।

जो मनुष्य सुख-दुख को एकसा मानता है, किसी तरह भी विकार को नहीं प्राप्त होता; मिट्टी के ढेले, पत्थर और सोने को एकसी निगाह से देखता है; प्यारी और अप्यारी चीज़ में एकसी बुद्धि रखता है; बड़ाई और बुराई को एकसा समझता है. उस धीर पुरुष को गुणातीत समझना चाहिए।

जिसको मान और अपमान (इज़्ज़त और बेइज़्ज़ती) का कुछ भी ख़याल नहीं रहता, जो मित्र और शत्रु को एकसा देखता है, और कामों के फलों की इच्छा नहीं करता, वही गुणातीत कहाता है।

हे अर्जुन ! जो मनुष्य भगवान् की अखण्ड भक्ति करता है वह सब गुणों को जीतकर परमात्मा को पा लेता है। उसकी मोक्ष हो जाती है।

पन्द्रहवाँ अध्याय

तत्त्वज्ञान और ईश्वर की ईश्वरता

श्री कृष्ण भगवान् ने कहा—हे अर्जुन ! यह संसार एक अश्वत्थ* (पीपल) वृक्ष की तरह है। इसकी जड़ ऊपर को और शाखायें नीचे को हैं। इसके पत्ते वेद हैं। यह अविनाशी (सदा रहनेवाला) वृक्ष है। जो इसे जानता है वह वेद को जानता है।

यद्यपि इस पेड़ का रूप, शुरू और अख़ीर किसी को मालूम नहीं होता, तो भी वैराग्य-रूप मज़बूत शस्त्र से ज्ञानी लोग इस पेड़ की जड़ को काट डालते हैं और फिर ऐसी जगह चले जाते हैं जहाँ से लौटकर नहीं आते।

इस जीवात्मा को ऐसे स्थान की खोज करनी चाहिए जहाँ से लौटकर आना न हो। उसको सदा ईश्वर की शरण में रहना चाहिए। उसे सदा यही समझना चाहिए कि मैं ईश्वर की शरण में आया हूँ।

---

*स्वामी शङ्कराचार्य इसको अपने भाष्य में इस तरह बढ़ाकर लिखते हैं—प्रकृति जड़ है, ईश्वर की कृपा से इसकी उत्पत्ति हुई है, बुद्धि स्कन्ध, इन्द्रिय खोखल, महाभूत शाखा, विषय पत्र, धर्माधर्म पुष्प, और सुख-दुख फल हैं। यह सारे जीवों का सहारा सनातन वृक्ष है।

जो पुरुष ईश्वर की शरण हो जाते हैं वे अविनाशी परमपद को पा लेते हैं। पर ईश्वर की शरण में जाने से पहले मनुष्य को अपना मान दूर कर देना चाहिए; मोह दूर कर देना चाहिए; किसी का सङ्ग नहीं करना चाहिए; आत्मा के ज्ञान में लीन रहना चाहिए; तमाम ख़्वाहिशों को छोड़ देना चाहिए; सुख-दुख का कभी ख़याल भी नहीं करना चाहिए और अज्ञान को दूर कर ज्ञान को बढ़ाना चाहिए।

हे अर्जुन! जिसको सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि नहीं प्रकाशित कर सकते, अर्थात् जो अपने आप प्रकाशरूप है, जहाँ पर जाने से फिर इस संसाररूपी चक्र में नहीं पड़ना होता वह अविनाशी धाम है। वह ईश्वर का धाम है। उसी को मोक्षधाम कहते हैं। वही सबसे बड़ा स्थान है।

इन्द्रिय और मन ही इस जीव को संसारचक्र में घुमाते रहते हैं। जिस तरह वायु फूलों से ख़ुशबू लेकर चारों ओर फैला देता है, इसी तरह यह जीव शरीर को धारण करके छोड़ता रहता है और कहीं का कहीं फिरा करता है। जहाँ कहीं यह जाता है, इन्द्रिय और मन इसके साथ ही साथ रहते हैं।

यह जीव कान, आँख, त्वचा, जीभ, नाक और मन के द्वारा तरह-तरह के विषयों को भोगा करता है।

एक देह से दूसरे देह को जाते हुए, या एक ही देह में रहते हुए या इन्द्रियों से मिलकर विषयों को भोगते हुए जीव को अज्ञानी लोग नहीं देख सकते। पर ज्ञानी जन अपनी ज्ञानरूपी आँखों से उसे देख लेते हैं। मतलब यह कि इसका पैदा होना,

मरना और शरीर में रहकर तरह-तरह के काम करना हर एक आदमी की समझ में नहीं आता। ज्ञानी लोग ही इन सब बातों को जानते हैं।

जो योगी समाधि लगाकर ध्यान करते हैं वे इसको अच्छी तरह देखते हैं। पर जिनके हृदय में ज्ञान का नाम भी नहीं ऐसे महामूर्ख हज़ार कोशिशें करने पर भी उसे नहीं देख सकते।

हे अर्जुन! सूर्य, चन्द्र और अग्नि में जो तेज दिखाई पड़ता है वह ईश्वर का ही तेज है। ईश्वर ही के तेज से सूर्य आदि प्रकाशमान पदार्थ सारे जगत् में प्रकाश फैला रहे हैं।

हे अर्जुन! पृथ्वीरूप होकर अपने पराक्रम से ईश्वर ही सबको धारण करता है। और वही रसरूप होकर सब ओषधियों को बढ़ाता है।

वही ईश्वर जठराग्नि*-रूप धारण कर सब प्राणियों के भोजन को पकाया करता है। वही अग्नि प्राण और अपान वायु के साथ मिलकर अन्न को पचाता है।

हे अर्जुन! ईश्वर सबके हृदय में रहता है। उसी से जीवों में ज्ञान, स्मृति (याददाश्त) और तर्क करने की शक्ति पैदा होती है। सब वेदों से उसी ईश्वर को जानना चाहिए। अर्थात् वह वेदों (ज्ञान) से ही जाना जा सकता है। वेद और वेदान्त का रचनेवाला और जाननेवाला एक ईश्वर ही है।

---

* जठराग्नि उस अग्नि का नाम है जो सब प्राणियों के पेट में रहता हुआ भोजन को पकाया करता है। यह अग्नि न हो तो किसी को न तो भूख लगे और न किसी का खाया हुआ पचे।

हे अर्जुन ! इस सारे जगत् में कुल तीन ही चीज़ें हैं । चौथी कोई नहीं । एक क्षर, दूसरा अक्षर, और तीसरा उत्तम पुरुष । क्षर प्रकृति को कहते हैं । क्योंकि वह सदा एकसी नहीं रहती । इसमें कुछ न कुछ विकार होता ही रहता है । और अक्षर जीवात्मा को कहते हैं, क्योंकि वह सब प्राणियों में वास करता है और कभी नष्ट नहीं होता । उसमें कभी किसी तरह का विकार नहीं होता । तीसरा परमपुरुष परमात्मा है । वह परमात्मा भी अविनाशी, सदा रहनेवाला और सारे जगत् में निवास करनेवाला है । वही सबको धारण करनेवाला और पालन करनेवाला है ।

क्योंकि क्षर और अक्षर (प्रकृति और जीव) से ईश्वर अलग है । उन दोनों से वह उत्तम है इसी लिए वेद में उसे पुरुषोत्तम कहा गया है ।

हे भारत ! जो लोग ईश्वर को इस तरह पुरुषोत्तम जानते हैं वे सब कुछ जानते हैं । वे ही ईश्वर की पूरी भक्ति करते हैं ।

हे पापरहित अर्जुन ! यह मैंने बड़ी गुप्त बात तुमसे कही है । इसको जानकर मनुष्य बुद्धिमान्, ज्ञानी, और कृतार्थ हो जाता है ।

सोलहवाँ अध्याय

दैवी और आसुरी सम्पत्ति का लक्षण

हे अर्जुन ! संसार में दो तरह के जीव हैं—देव और असुर। जिनके पास दैवी सम्पत्ति होती है वे देव कहलाते हैं और जो आसुरी सम्पत्तिवाले हैं वे असुर।

दैवी सम्पत्ति में ये बातें होती हैं—

१—अभय (निडरपन)।
२—चित्त की शुद्धि।
३—ज्ञान-प्राप्ति का उद्योग।
४—दान।
५—इन्द्रियों का संयम।
६—यज्ञ।
७—वेदों का पढ़ना।
८—तप।
९—सीधापन (सादापन)।
१०—अहिंसा (किसी जीव को कष्ट न देना)।
११—सच बोलना।
१२—क्रोध न करना।
१३—उदारता।
१४—शान्ति।
१५—चुग़ली न करना।
१६—जीवों पर दया।
१७—विषयों में अधिक न फँसना।
१८—कोमलता।
१९—लज्जा।
२०—चपलता का न होना।
२१—धीरपन।
२२—क्षमा।

२३—पवित्रता ।
२४—किसी से वैर न करना ।
२५—अपने आदर-सत्कार की इच्छा न करना ।

आसुरी सम्पत्ति में ये बातें होती हैं—

१—दम्भ अर्थात् छल-कपट ।
२—क्रोध अर्थात् ग़ुस्सा ।
३—अभिमान अर्थात् घमण्ड ।
४—कठोरता अर्थात् सख़्ती ।
५—अज्ञान ।

हे अर्जुन ! दैवी सम्पत्ति से मोक्ष होती है और आसुरी से बन्धन होता है । हे अर्जुन ! तू शोक मत कर। क्योंकि तू तो दैवी सम्पत्ति भोगने के लिए अच्छे कुल में पैदा हुआ है । हे अर्जुन ! इस लोक में दो तरह की सृष्टि है । दैवी और आसुरी । सो दैवी सम्पत्ति का तो इसने विस्तार से वर्णन कर ही दिया। अब आसुरी सम्पत्ति का और ख़ुलासा हाल कहते हैं; सुनो ।

जिनका स्वभाव आसुरी है वे किसी बात के मर्म को अच्छी तरह नहीं समझ सकते । वे नहीं जानते कि क्या बात ठीक है और क्या बे ठीक । इनमें न पवित्रता होती है, न आचार होता है और न सच होता है । मतलब यह कि आसुरी वृत्तिवाले प्राणी मैले-कुचैले रहते हैं और आचार-विचार का वे कुछ ख़याल नहीं रखते और सच कभी नहीं बोलते । सदा झूठ ही बोला करते हैं ।

असुर लोग इस जगत् को असत्य मानते हैं अर्थात् वे कहते हैं कि इसमें सत्य वेद आदि का प्रमाण नहीं है । वे इसे अप्रतिष्ठ भी कहते हैं अर्थात् धर्माधर्म की कोई व्यवस्था ठीक नहीं है । इसके सिवा वे इसे अनीश्वर भी कहते हैं। अर्थात् इसका कर्त्ता कोई

ईश्वर-वीश्वर नहीं। वे कहते हैं कि यह जगत् स्त्री-पुरुषों से ही पैदा हो जाता है और कोई दूसरा कारण नहीं है।

हे अर्जुन! मलिन चित्तवाले, महामूर्ख और ख़राब काम करने-वाले असुर लोग जगत् के नाश करनेवाले होते हैं। वे जगत् का नाश करने के लिए ही पैदा होते हैं।

असुर स्वभाववाले लोग ऐसे-ऐसे मनोरथ किया करते हैं कि जो बड़े भारी दुःख से पूरे हों। अपने बुरे कामों के पूरा करने के लिए वे छल-कपट और झूठ का सहारा लिया करते हैं।

वे जब तक जीते हैं तब तक चिन्ता ही में डूबे रहते हैं। उनकी चिन्ता कभी दूर नहीं होती। तरह-तरह के विषयभोग करने की इच्छा उनको हर वक़्त बनी रहती है। और वे विषयभोगों को ही परमपुरुषार्थ समझा करते हैं।

वे तरह-तरह की आशाओं (ख़्वाहिशों) की फाँसी में फँसे रहते हैं। वे काम और क्रोध में सदा तत्पर रहते हैं और अपनी कुवासनाएँ पूरा करने के लिए तरह-तरह के अन्याय करके धन इकट्ठा किया करते हैं।

हे अर्जुन! आसुरी स्वभाववाला मनुष्य अपने जी में रात-दिन यही सोचता रहता है कि "यह काम तो मेरा आज हो गया। कल इस काम को करूँगा। यह चीज़ तो मेरे पास है। वह चीज़ भी मुझे कल मिल जायगी। इतना रुपया तो मेरे पास जमा हो चुका। कल इतना और धन कमाऊँगा। इस शत्रु को तो मैंने मार दिया, अब औरों को भी जल्द मारूँगा। मैं समर्थ हूँ। मैं सब भोगों के भोगने के लिए समर्थ हूँ। मैं सिद्ध हूँ, कृतकृत्य हूँ, बल-

वान् हूँ, सुखी हूँ, धनाढ्य हूँ और बड़े नामी कुल में पैदा हुआ हूँ। मेरे बराबर दूसरा कोई नहीं। मैं यज्ञ करता हूँ, दान करता हूँ और प्रसन्न रहता हूँ।" इसी तरह वह और भी तरह-तरह की बातें बनाया करता है।

हे, अर्जुन! जिनके मन में तरह-तरह की भ्रमजाल की बातों की लहरें उठा करती हैं और जो अज्ञानरूप-जाल में और भोगों में रात-दिन फँसे रहते हैं, वे नीच जन बड़े भयानक नरक में पड़ते हैं।

ऐसे लोगों का स्वभाव ही कुछ अजब तरह का हो जाता है। वे अपनी बड़ाई अपने ही मुँह किया करते हैं। वे सत्कार करने लायक बड़े बूढ़े आदमी का भी सत्कार नहीं किया करते। वे धन के नशे में ऐसे चूर हो जाते हैं कि इन्हें करने न करने लायक काम का विवेक ही नहीं रहता। वे कोई काम विधि से नहीं किया करते।

हे अर्जुन! उनके अहङ्कार, बल, गर्व, काम और क्रोध आदि दोष इतने बढ़ जाते हैं कि दूसरों के साथ द्वेष करने लगते हैं। वे नहीं जानते और नहीं समझते कि हम में और दूसरे में एक ही परमात्मा है।

हे अर्जुन! सन्मार्ग से उलटा चलनेवाले, क्रूर और सदा बुरे ही काम करनेवाले उन नीच जनों को ईश्वर सदा आसुरी योनि में ही जन्म देता है। उनका बार-बार आसुरी योनि में ही जन्म होता है।

हे कौन्तेय! वे अधम असुर हर एक जन्म में आसुर स्वभाव-

वाले होकर ईश्वर को नहीं पा सकते। वे और भी नीच गति को प्राप्त हो जाते हैं।

हे अर्जुन! काम (इन्द्रियों के द्वारा विषय-भोगों की इच्छा), क्रोध (ज़रा-ज़रा सी बात पर लाल-तेज हो उठना) और लोभ ये तीन बातें नरक के दरवाज़े हैं। इसलिए अपने नाश करनेवाले इन तीनों दोषों को दूर करना चाहिए।

हे कौन्तेय! इन तीनों बुराइयों को दूर करनेवाले को सुख ही मिलता है। वह नरक में नहीं जाता बल्कि और अच्छी गति को प्राप्त होता है।

जो लोग शास्त्र की मर्यादा को छोड़कर मनमाने रास्ते से चलने लगते हैं उनको सिद्धि नहीं मिलती। उनको न सुख मिलता है न उत्तम गति। अर्थात् वे सदा दुखी रहते हैं और मरकर भी नीच गति पाते हैं।

शास्त्र के बताये हुए रास्ते पर चलना धर्म, और उसके विरुद्ध चलना अधर्म है। इसलिए हे अर्जुन! तू शास्त्र में कहे हुए कामों को कर अर्थात् युद्ध कर।

सत्रहवाँ अध्याय

गुण-त्रय-विभेद-निरूपण

यह सुनकर अर्जुन ने कहा—हे श्रीकृष्ण ! जो लोग शास्त्रविधि को छोड़कर श्रद्धा से यज्ञ करते हैं उनकी श्रद्धा कैसी है ? वह सात्विकी है या राजसी अथवा तामसी ?

श्रीकृष्ण भगवान् बोले—हे अर्जुन ! मैं तीनों तरह की श्रद्धाओं का वर्णन करता हूँ; सुन।

श्रद्धा तीन तरह की होती है। सात्विकी, राजसी और तामसी। मनुष्यों का जैसा स्वभाव होता है वैसी ही उनकी श्रद्धा होती है। जिनकी जैसी श्रद्धा होती है वे वैसे ही हो जाते हैं।

सत्वगुणवाले मनुष्य अपने ही बराबर गुणवालों का पूजा-सत्कार किया करते हैं अर्थात् वे देवताओं की पूजा करते हैं और रजोगुणी यक्ष-राक्षसों की पूजा करते हैं; क्योंकि वे जैसे आप होते हैं वैसों ही की पूजा करना पसन्द करते हैं। और जो तमोगुणी हैं वे भूत-प्रेत आदि तामसी योनियों की पूजा करते हैं। मतलब यह कि जो जैसा होता है वह वैसे ही को भजता है। और जैसे को भजता है वैसा ही हो जाता है।

हे अर्जुन ! जो पाखण्डी हैं, अहङ्कारी हैं, काम और संसारी

प्रेम से युक्त हैं, वे मूर्ख, शास्त्र के विरुद्ध ऐसा घोर तप* करते हैं कि जिससे अन्तर्यामी परमात्मा को भी वहुत वुरा लगता है। उन मनुष्यों को तू असुर जान ।

हे भारत ! इन तीनों प्रकार के स्वभाववालों का आहार (भोजन), यज्ञ, तप और दान भी अलग-अलग है । ये वातें भी तीन-तीन तरह की होती हैं । उनके भी भेदों को सुन ।

पहले भोजन ही को देखो । सात्विक किसी तरह का भोजन पसन्द करते हैं, रजोगुणी किसी तरह का और तमोगुणी किसी और ही तरह का भोजन पसन्द करते हैं ।

आयु, उत्साह, पराक्रम, आरोग्य, सुख और प्रसन्नता वढ़ानेवाला, रसीला, चिकना, और वहुत काल तक शरीर में वल देनेवाला, आनन्ददायक भोजन सात्विक लोगों को वड़ा प्यारा लगता है।

कटु (तीत), खट्टा, खारा, वहुत गरम, चटपटा, रूखा, पेट में गर्मी पैदा करनेवाला, दुःख, शोक और रोग का वढ़ानेवाला भोजन रजोगुणी लोगों को वहुत भाता है ।

ठण्ढा, वासी, नीरस, सड़ा-गुसा, वहुत देर का रक्खा हुआ, जूँठा, अपवित्र भोजन तमोगुणी लोगों को प्यारा लगता है ।

---

* वहुत से वनावटी साधु भोले-भाले लोगों को ठगने के लिए काँटों पर सोया करते हैं, लोहे की कीलों पर वैठकर लोगों को यह दिखलाया करते हैं कि देखो हम कैसी कठिन तपस्या कर रहे हैं । कितने ही ठग अपने पाँवों को रस्सी से वाँधकर उलटे लटकने लगते हैं । कोई-कोई छली अपने चारों ओर आग जलाकर उसके वीच में आप वैठ जाता है । ये और इसी तरह के और भी सव काम शास्त्र के विरुद्ध हैं । ये असुर-व्रत कहलाते हैं । इनके करनेवालों को असुर समझना चाहिए ।

यज्ञ भी तीन तरह के होते हैं। वे ये हैं--

"ज़रूर यज्ञ करना चाहिए, यज्ञ करना धर्म है"—यह सोच-कर मन में निश्चय करके जो यज्ञ करते हैं और किसी तरह की इच्छा नहीं रखते, ऐसे यज्ञ को सात्त्विक यज्ञ कहते हैं।

हे भरतश्रेष्ठ! किसी मनोरथ से, या योंही आडम्बर के लिए, ढोंग फैलाने के लिए और दूसरों को दिखाने के लिए जो यज्ञ किया जाता है वह राजस यज्ञ कहलाता है।

शास्त्र की विधि से विरुद्ध, जिसमें अन्न का दान नहीं, वेद-मन्त्रों का पाठ नहीं, और श्रद्धा का नाम नहीं, ऐसा यज्ञ तामस यज्ञ कहलाता है।

अब तप का वर्णन सुनिए।

देवता, ब्राह्मण, गुरुजन, और बुद्धिमान् लोगों का पूजन, पवित्रता, सीधापन, ब्रह्मचर्य, किसी प्राणी को न मारना, यह शारी-रिक (शरीर से होनेवाला) तप कहलाता है।

किसी के मन को न सताना, सच, प्यारी और हित की बात कहना, अच्छी-अच्छी विद्याओं का पढ़ना, यह वाचिक (वाणी से किया जानेवाला) तप कहलाता है।

मन की प्रसन्नता, सौम्यता, अच्छी बातों का मानना, विषयों को मन से रोकना, और कपट-रहित रहना, यह मानसिक (मन से होनेवाला) तप कहा जाता है।

हे अर्जुन! जिन लोगों का मन पवित्र हो गया है और जो फल की इच्छा बिलकुल नहीं करते उनसे श्रद्धा से किया हुआ तीनों तरह का तप सात्त्विक तप कहलाता है।

जो तप अपने सत्कार के लिए, अपने मान के लिए, और अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने लिए ढोंग से किया जाता है वह चञ्चल तप राजस कहलाता है। वह सदा नहीं रहता। उसका फल चिरकाल तक नहीं ठहरता।

दुराग्रह से, हठ से, अपने आत्मा को दुखी करके या किसी दूसरे को दुखी करने के लिए जो तप किया जाता है वह तामस कहा जाता है।

इसी तरह दान भी तीन तरह का है। उसका भी वर्णन सुनिए।

"ज़रूर देना चाहिए, दान करना मनुष्य का धर्म है"—ऐसा सोचकर देश, काल और पात्र का विचार करके जो दान अनुपकारी (जिसने अपने लिए कुछ उपकार न किया हो) पुरुष को दिया जाता है वह सात्विक दान कहा जाता है।

जो दान किसी उपकार के बदले में, या किसी फल की इच्छा से, दुःख मानकर दिया जाता है वह राजस दान कहा जाता है।

बेमौक़े, बेवक्त, और नालायक़ आदमी को अनादर और तिरस्कार करके जो दान दिया जाता है वह तामस दान कहाता है।

हे अर्जुन! ओ३म्, तत्, सत्, ये तीन नाम ईश्वर के वाचक हैं। ये ब्रह्म के नाम हैं। उसी परमात्मा ने पहले ब्राह्मण, वेद और यज्ञ को बनाया है। ॐ परमात्मा का सबसे उत्तम नाम है। इसलिए ब्रह्मज्ञानी लोग जब शास्त्रोक्त यज्ञ करते हैं, दान करते हैं और तप करते हैं तब, सबसे पहले, इस ओंकार ही का उच्चारण

किया करते हैं। अर्थात् ब्रह्मवादी लोग अपने हर एक शुभ काम के शुरू करने से पहले "ॐ" कहा करते हैं।

जो लोग मोक्ष के सिवा और किसी फल की इच्छा नहीं करते वे यज्ञ, दान और तप में "तत्" ऐसा कहा करते हैं।

हे अर्जुन! "सत्" शब्द का अर्थ 'होना' और 'अच्छापन' है। इसलिए उत्तम काम के बतलाने के लिए यह "सत्" शब्द कहा जाता है। यज्ञ, तप और दान के काम को सत् कहते हैं। इसलिए इनके लिए जो काम किया जाता है उसे सत् अर्थात् सत्कर्म कहते हैं।

हे पृथा के पुत्र अर्जुन! जो काम अश्रद्धा से, विना भक्ति किया जाता है—फिर चाहे वह यज्ञ, दान, तप या और कोई काम क्यों न हो सब—असत् अर्थात् असत्कर्म कहलाता है। ऐसा काम न इस लोक में कुछ भलाई कर सकता है न परलोक में।

अठारहवाँ अध्याय

ईश्वरीय ज्ञान का प्रकाश और अर्जुन के अज्ञान का नाश

यह सुन अर्जुन ने पूछा—हे महाबाहो, हे हृषीकेश, हे केशिदैत्य के मारनेवाले श्रीकृष्ण! संन्यास और त्याग के कर्म को मैं अलग-अलग जानना चाहता हूँ। कृपा कर कहिए।

श्रीकृष्ण भगवान् बोले—हे अर्जुन! जो काम्य कर्म हैं (अर्थात् अश्वमेध आदि) उनके छोड़ने को संन्यास कहते हैं। और सारे कामों के फलों को छोड़ने को त्याग कहते हैं।

कितने ही पण्डितों की यह राय है कि कर्म में बड़े-बड़े दोष हैं इसलिए उसको छोड़ ही देना चाहिए। कोई एक कहते हैं कि यज्ञ, तप और दान-सम्बन्धी जो काम हैं उन्हें नहीं छोड़ना चाहिए। वे छोड़ने लायक़ नहीं हैं।

हे भरत-कुल-श्रेष्ठ! त्याग के विषय में जो मेरा निश्चय है उसे सुन। हे पुरुषश्रेष्ठ! मेरी राय में वह त्याग (छोड़ना) तीन तरह का है।

मेरी राय भी यही है कि यज्ञ, तप और दान-सम्बन्धी जो

काम हैं वे छोड़ने लायक़ नहीं हैं उनका करना ही ठीक है। यज्ञ, तप और दान ये ज्ञानी पुरुष के मन को शुद्ध कर देते हैं।

पर हे अर्जुन ! ये सब काम भी आसक्ति को छोड़कर करने चाहिएँ। अर्थात् ये करने तो चाहिएँ पर इनमें ज़्यादा फँसना भी ठीक नहीं। मेरा यही मत है और मेरी राय में यही ठीक भी है।

अपने नियमित कामों का त्याग नहीं हो सकता। यदि मूर्खता से उनका त्याग कर भी दिया जाय तो यह तामस त्याग कहा जाता है। मतलब यह कि कर्म को न जानकर जो नहीं किया जाता वह अच्छा नहीं।

'कर्म दुखदायी होते हैं'—इस ख़याल से शरीर के क्लेश के डर से जो काम छोड़ दिये जाते हैं वह राजस त्याग कहा जाता है।

हे अर्जुन ! "अपना नियमित काम ज़रूर करना चाहिए"—यह सोचकर, उसमें आसक्ति न करके अर्थात् उसमें ज़्यादा न फँसकर—फल की इच्छा को छोड़कर जो काम किया जाता है वह सात्विक त्याग कहा जाता है। मतलब यह निकला कि फल की इच्छा के छोड़ने को सात्विक त्याग कहते हैं। यही त्याग सबसे अच्छा है।

जो सात्विक त्याग करनेवाला पुरुष दुखदायी कामों में अप्रीति और सुखदायी कामों में प्रीति नहीं रखता वह सच्चा त्यागी है। उसके सब सन्देह दूर हुए समझने चाहिएँ।

हे अर्जुन ! यह प्राणी कामों को बिलकुल छोड़ नहीं सकता, इसलिए जो कर्म तो करता है पर कर्मों के फलों को छोड़ देता है,

उनकी इच्छा नहीं करता, वह त्यागी कहा जाता है। त्याग वही है जिसमें अपनी इच्छा का, स्वार्थ का, त्याग हो।

हे अर्जुन! कर्मों के फल तीन * तरह के होते हैं—अनिष्ट, इष्ट और मिश्र। ये फल उनको मिलते हैं जो त्याग नहीं करते। त्याग न करनेवालों को ये फल अगले जन्म में भोगने पड़ते हैं। पर संन्यासियों को ये नहीं भोगने पड़ते।

हे महाबाहो! सांख्यशास्त्र में कर्मों के पाँच तरह के कारण बताये हैं। अर्थात् पाँच बातों से ही मनुष्य काम करता है। उनको तू मुझसे सुन।

१—अधिष्ठान अर्थात् शरीर। क्योंकि इच्छा, द्वेष, सुख, दुख और ज्ञान आदि का यही आधार है।

२—कर्त्ता अर्थात् सच्चित् स्वरूप अर्थात् जीवात्मा।

३—करण अर्थात् इन्द्रियाँ। जैसे—आँख, कान आदि।

४—तरह-तरह की चेष्टा अर्थात् प्राण, अपान आदि वायुओं की तरह-तरह की हरकतें।

५—दैव अर्थात् प्रारब्ध या सबका प्रेरण करनेवाला परमात्मा।

यह मनुष्यशरीर, मन और वाणी से अच्छे या बुरे जो कुछ काम करता है उसके ये पाँच कारण समझने चाहिएँ।

इन सब बातों के होने पर भी जो लोग आत्मा ही को सब कामों का कर्त्ता समझते हैं वे मूर्ख कुछ नहीं समझते।

हे अर्जुन! मैं यह कर्म करता हूँ—जो ऐसा विचार नहीं

---

* अनिष्ट उन फलों को कहते हैं जो नरक या और किसी नीच योनि में डालें। इष्ट फल से देवता बनते हैं और मिश्र फल से मनुष्य।

रखता अर्थात् अपने को कर्त्ता (करनेवाला) नहीं मानता और कामों में आसक्त नहीं होता, तो ऐसा मनुष्य किसी को मारकर भी नहीं मारता और न उसे पाप बाँधते हैं। मतलब यह कि वह किसी को मारकर भी पाप का भागी नहीं होता।

कोई मनुष्य जब किसी काम को करना चाहता है तब, पहले वह काम सिद्ध होने का उपाय सोचता है। वह सोच लेता है कि यह काम इस तरह बनेगा। फिर वह जिस तरह काम बनता जानता है वैसा आचरण करता है। उस समय यह देखना कि क्या काम हमारे लिए कर्त्तव्य है, 'ज्ञेय' कहलाता है। उस ज्ञेय के समझने के लिए विचार और ज्ञान की ज़रूरत होती है। क्योंकि इसके बिना वह नहीं जाना जाता। और जिसके मन में वह ज्ञान और विचार पैदा हो जाते हैं वह परिज्ञाता (अच्छी तरह जाननेवाला) कहलाता है। इस तरह कामों के करने में ज्ञान, ज्ञेय और परिज्ञाता ये तीन कारण हैं।

कर्मों के संग्रह में तीन बातें हुआ करती हैं। करण*, कर्म और कर्त्ता।

सांख्यशास्त्र में ज्ञान, कर्म और कर्त्ता भी तीन-तीन तरह के लिखे हैं। वे अलग-अलग वर्णन किये जाते हैं।

जिस ज्ञान से ब्रह्मा से लेकर छोटे जीव तक सब प्राणियों में

---

*क्रिया के सिद्ध होने के साधन का नाम करण है। जैसे, 'हम आँख से पुस्तक को देखते हैं'—इसमें देखना एक काम है, यही क्रिया है। इसका साधन आँख है। क्योंकि आँख के बिना देखना नहीं हो सकता। इसलिए वह 'देखना' क्रिया का करण कहलाता है। 'पुस्तक' इस क्रिया का कर्म है और 'हम' कर्त्ता।

भेद-रहित एक ही परमात्मा दिखाई देता है वह सात्विक ज्ञान कहलाता है।

जिस ज्ञान से सारे प्राणियों में अलग अलग बेशुमार भाव दिखाई पड़ें, उसको राजस ज्ञान कहते हैं।

किसी एक ही शरीर आदि में यह समझना कि बस ईश्वर इतना ही है,—ऐसे झूठे और तुच्छ ज्ञान को तामस ज्ञान समझना चाहिए।

आसक्ति, राग-द्वेष और फल की इच्छा को छोड़कर जो काम नित्य नियम से किया जाता है वह सात्विक कर्म है।

जो काम किसी कामना से या अहंकार से, बड़ी तकलीफ़ उठाकर, किया जाता है वह राजस कर्म कहाता है।

जिन कामों के करने में किसी तरह का आगा-पीछा नहीं सोचा जाता, भलाई-बुराई का कुछ ध्यान नहीं किया जाता, किसी के लाभ-हानि का, धननाश का, दूसरे की तकलीफ़ का और अपनी ताक़त का कुछ भी विचार नहीं किया जाता वह तामस कर्म कहा जाता है।

कर्म के करनेवाले भी तीन तरह के होते हैं। उनका हाल भी सुनिए।

जो किसी का सङ्ग नहीं करता, अकेला रहता है, जिसमें अहंकार का नाम-निशान नहीं, जो धीरज और उत्साहवाला है, और जो काम के बनने या बिगड़ने में एकसा रहता है अर्थात् किसी तरह का हर्ष और शोक नहीं करता वह कर्त्ता सात्विक कहलाता है।

जिनको कामों के करने में प्रीति हो; जो कर्म-फल की इच्छा करता हो; जो लोभी, हिंसक, अपवित्र और हर्ष-शोकयुक्त हो उसे राजस कर्ता समझना चाहिए।

जिसमें किसी तरह की योग्यता न हो, कुछ भी ज्ञान न हो, जो माननीय पुरुषों का मान न करे, जो शठ हो, पराई जीविका का नाश करनेवाला हो, कुछ भी उद्योग-धन्धा न करता हो, और रात-दिन शोक में ही डूबा रहता हो, वह तामस कर्ता कहाता है।

हे धनञ्जय! बुद्धि और धैर्य भी इसी तरह तीन-तीन तरह के हैं। उनका वृत्तान्त भी सुनो।

हे अर्जुन! जिस बुद्धि से धर्म में प्रवृत्ति हो, जो अधर्म से हटा-कर धर्म में लगावे; किस समय क्या करना चाहिए, क्या नहीं करना चाहिए; किससे डरना चाहिए, किससे नहीं, बन्धन किसे कहते हैं और मोक्ष किसे कहते हैं, इत्यादि बातों को जो बुद्धि बता देती है वह सात्विक बुद्धि है।

हे पार्थ! जिस बुद्धि से धर्म-अधर्म, और क्या करना चाहिए, क्या नहीं करना चाहिए, इत्यादि बातों का ठीक-ठीक ज्ञान न हो वह राजस बुद्धि कहाती है।

हे अर्जुन! जिस अज्ञान भरी बुद्धि से मनुष्य अधर्म को धर्म और अहित को हित मानने लगता है वह बुद्धि तामस है।

हे अर्जुन! चित्त की एकाग्रता से न विचलनेवाला धैर्य, जिससे इन्द्रियाँ ठीक रास्ते पर चलती हैं, सात्विक धैर्य कहलाता है।

हे अर्जुन! वह धैर्य राजस धैर्य कहलाता है जिससे मनुष्य

धर्म, अर्थ और काम में लगता है और उनमें लगने से फल का अभिलाषी होता है। मतलब यह कि जिस धैर्य से लोग धर्म-कर्म करते हैं और उनके फल चाहते हैं वह राजस धैर्य कहलाता है।

हे पार्थ! जिस धीरज से मनुष्य नींद, डर, शोक, दुख और उन्माद से घिरा रहता है वह तामस धीरज कहाता है।

हे भरतवंशी अर्जुन! सुख भी तीन तरह के हैं। मैं उनको अलग-अलग कहता हूँ, सुन। उस सुख के जानने से प्रीति बढ़ती है और ठहरने से दुख दूर हो जाते हैं।

जो सुख शुरू में तो विष की तरह कड़वा हो, पर बाद में अमृत के समान मीठा हो, आत्मा के विचार करनेवाली बुद्धि से निर्मल हुआ वह सुख सात्विक सुख कहलाता है।

जो सुख इन्द्रियों से पैदा होता है और शुरू में अमृत की तरह मीठा, पर बाद में विष के समान कड़वा लगता है वह राजस सुख कहलाता है।

जो सुख शुरू में और अखीर में, दोनों वक्त, चित्त को मोह में फँसाये रखता है और नींद, आलस्य और प्रमाद को ज्यादा बढ़ाता है वह तामस सुख कहलाता है।

हे अर्जुन! तीनों लोकों में ऐसा कोई प्राणी नहीं जो इन तीनों (सत्व, रज, तम) गुणों से अलग हो।

हे परन्तप! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, इनके स्वाभाविक गुणों के अनुसार ही सारे कर्म अलग-अलग बाँट दिये हैं।

चित्त की स्थिरता, इन्द्रियों का रोकना, तप, पवित्रता, क्षमा,

सीधापन, ज्ञान, विज्ञान और आस्तिकता अर्थात् परलोक में श्रद्धा, ये सब कर्म ब्राह्मण के स्वाभाविक हैं ।

शूरता, साहस, धीरज, चतुराई, युद्ध में स्थिर होना, उदारता और सामर्थ्य, ये क्षत्रियों के स्वाभाविक कर्म हैं ।

खेती, पशुओं की रक्षा, व्यापार करना, यह वैश्य का स्वाभाविक कर्म है । और शूद्र का तो बस एक ही कर्म है अर्थात् तीनों वर्णों की टहल करना ।

हे अर्जुन ! अपने-अपने काम करने से मनुष्य को बड़ा अच्छा फल मिलता है । किस काम में क्या फल मिलता है, सो सुन ।

जिस परमेश्वर से सारे प्राणियों की उत्पत्ति हुई है और जिसके सामर्थ्य से सारा जगत् चल रहा है उस परमात्मा का आराधन भी मनुष्य अपने ही कर्म करता हुआ कर सकता है । मतलब यह कि अपने कर्मों से ही मनुष्य जगदीश्वर परमात्मा की भक्ति करके बड़ी भारी सिद्धि को पाता है ।

पराये धर्म के करने से अपना गुणहीन धर्म अच्छा है । क्योंकि अपने स्वाभाविक धर्म के करनेवाले को कुछ पाप नहीं लगता ।

हे अर्जुन ! चाहे अपने स्वाभाविक कर्म में कुछ दोष (नुक्स) ही क्यों न हो, पर उसे कभी छोड़ना नहीं चाहिए । क्योंकि दोष सबमें है ।

संसार की किसी चीज़ में मन न देनेवाला, अपने अन्तःकरण को जीतनेवाला, इच्छा को छोड़नेवाला मनुष्य संन्यास अर्थात् कर्मफल के छोड़ने से बड़ी भारी सिद्धि पाता है । अर्थात् उसका मोक्ष हो जाता है ।

हे अर्जुन ! इस सिद्धि को पाकर मनुष्य किस तरह ब्रह्म को पाता है, वह सब मैं कहता हूँ, सुन।

जिस मनुष्य की बुद्धि ख़ूब शुद्ध हो गई हो, धीरज के द्वारा जिसने अपना मन अपने अधीन कर लिया हो, जिसने सब इन्द्रियों के विषयों को और राग-द्वेष को जीत लिया हो, जिसने पवित्र और एकान्त देश में रहकर अपने शरीर, मन और वाणी को जीत लिया हो, जिसने ध्यान के अभ्यास से चित्त को ठहरा लिया हो, विषयों से विराग पैदा कर लिया हो; अहंकार, दुराग्रह (हठ), घमण्ड, काम, क्रोध और भोग-विलास के सब सामान जिसने छोड़ दिये हों; ममता को दूर कर दिया हो और जो सब तरह से शान्त हो गया हो, ऐसा मनुष्य ब्रह्मपद को पा लेता है। मतलब यह कि जिस तरह परब्रह्म आनन्द-स्वरूप है इसी तरह वह मनुष्य भी आनन्दरूप हो जाता है।

हे अर्जुन ! सारे प्राणियों में बराबर बुद्धि रखनेवाला, ब्रह्म को पाकर प्रसन्नचित्त हो जाता है। उसको किसी तरह का शोक या इच्छा नहीं होती। फिर वह ईश्वर ही में दृढ़ भक्ति कर लेता है।

जब उसे भक्ति हो जाती है तब ईश्वर को अच्छी तरह जान लेता है। फिर सर्वव्यापी और परमानन्द-स्वरूप परमात्मा को जानकर वह भी परमानन्दमय हो जाता है। फिर उसको किसी तरह का दुःख नहीं रहता।

हे अर्जुन ! सारे काम करता हुआ ईश्वर का भक्त ईश्वर की कृपा से अविनाशी पद को पा लेता है।

हे अर्जुन ! तू मन से सारे कर्मों को ईश्वरार्पण कर। ईश्वर को

ही सब कुछ मान। निश्चय-बुद्धि से मन को एक ठिकाने कर और सदा ईश्वर ही में मन लगा। ईश्वर में मन लगाने से तू सारे दुःखों से तर जायगा। यदि अहंकार से तू मेरी बात न सुनेगा, न मानेगा, तो तेरा नाश हो जायगा। तेरे शत्रु युद्ध न करते हुए तुझको मार डालेंगे।

यदि अहंकार में आकर तू "मैं युद्ध नहीं करूँगा" ऐसा मानता है तो तेरा यह ख़याल भी झूठा है। क्योंकि रजोगुणी प्रकृति जातिस्वभाव से तुझको युद्ध में ज़रूर लगावेगी।

हे कौन्तेय! स्वभावसिद्ध अपने कर्म से बँधा हुआ तू अज्ञान से जो काम करने को मना करता है उसको तू परवश होकर ज़रूर करेगा। प्रकृति तुझको करा कर छोड़ेगी।

हे अर्जुन! अपनी माया से सब प्राणियों को अपने-अपने कामों में लगाता हुआ ईश्वर सब प्राणियों के हृदय में निवास करता है। जिस तरह कठपुतलियों का तमाशा करनेवाला मायावी पुरुष अलग—दूर—बैठकर एक तार के द्वारा कठपुतलियों को मनमाना नचाया करता है ठीक इसी तरह परमात्मा भी सबके भीतर रहकर सबको उनके स्वभाव के अनुसार कामों में लगाया करता है। उसी के घुमाये हुए सारे प्राणी संसारचक्र में घूम रहे हैं।

हे भारत! तू सब तरह से उस परमेश्वर की शरण हो जा। उसी की कृपा और प्रसन्नता से तुझे शान्ति और भक्ति मिलेगी।

हे अर्जुन! मैंने तेरे लिए यह बड़ी गुप्त बात कही है। इसको विचार करके तेरी जैसी इच्छा हो वैसा कर।

हे अर्जुन! मैं फिर तुझे एक और बड़ी अच्छी बात सुनाता

हूँ। तू उसे सुन, क्योंकि तू मेरा बड़ा मित्र है। इससे मैं तेरे लिए हित की बात कहता हूँ।

तू ईश्वर में मन लगा, उसी की पूजा कर, उसी को नमस्कार कर; मैं सच कहता हूँ और प्रतिज्ञा करता हूँ कि तू ईश्वर को प्राप्त हो जायगा। क्योंकि तू ईश्वर का प्यारा भक्त है।

तू सब धर्मों को छोड़कर एक ईश्वर की शरण हो जा। और कभी तुझे यह शङ्का हो कि धर्म के छोड़ने से बड़ा पाप होता है, धर्म नहीं छोड़ना चाहिए, तो इस बात का भी तू डर मत कर। क्योंकि वह परमात्मा तुझे सब पापों से छुड़ा देगा। तू किसी बात का सन्देह मत कर। मतलब यह कि ईश्वर की भक्ति के आगे सब धर्म तुच्छ हैं। धर्मों को छोड़कर ईश्वर में प्रेम लगाना चाहिए। वास्तव में सोचा जाय तो धर्म भी इसी लिए है कि जिससे ईश्वर में भक्ति हो। धर्म का फल भी ईश्वर में भक्ति का होना ही है। यदि ईश्वर में प्रेम नहीं तो धर्म किस काम का। ईश्वर का भक्त यदि धर्म-कर्म को नहीं करता तो उसे कोई पाप नहीं लगता। भक्ति से तो उसके पहले भी पाप दूर हो जाते हैं। यही नहीं बल्कि वह औरों के भी पाप दूर करने योग्य हो जाता है। इसी लिए श्रीकृष्णचन्द्र अर्जुन को उपदेश करते हैं कि तू ईश्वर में मन लगा। वह तुझे सब पापों से पार करेंगे; तू कुछ सोच मत कर।

हे अर्जुन! यह मैंने तुझे बड़े रहस्य की बात बताई है। यह मेरा कहा हुआ ज्ञान किसी ऐसे-वैसे से नहीं कहना। यदि किसी अज्ञानी से कह दिया जाय तो शायद वह इसका उलटा मतलब

समझ लें। जो अपने धर्म-कर्म पर न चलता हो, जो ईश्वर और गुरु में भक्ति-श्रद्धा न रखता हो, जो उपदेश सुनने की इच्छा भी न करता हो, और जो मेरी निन्दा करता हो, उससे यह ज्ञान कभी मत कहना। क्योंकि ऐसे आदमी को इस ज्ञान से कुछ लाभ नहीं होता।

हे अर्जुन! जो भक्त मुझमें और ईश्वर में प्रेम रखनेवाले को इस ज्ञान का उपदेश करेगा वह ज़रूर ईश्वर को प्राप्त हो जायगा। जो भक्त मेरे कहे हुए इस ज्ञान को लोगों से कहेगा, उपदेश करेगा, उससे ज़्यादा प्यारा मुझे और कोई न है और न होगा।

हे अर्जुन! इस समय मैंने तुझसे वह बात कही है जिसके पढ़ने, सुनने और समझने से ईश्वर की साक्षात् पूजा करने का फल मिलता है।

हे अर्जुन! ये बातें जो मैंने तुझसे गाई हैं, कही हैं, 'गीता' हैं। जो इस गीता को सुने और इसके अनुसार अपना सुधार करे तो वह सब पापों से छूटकर पुण्यात्माओं के लोक में जाता है अर्थात् मर कर सुख भोगता है।

हे पार्थ! तूने मेरे कहे हुए उपदेश को मन लगाकर सुना या नहीं? हे धनञ्जय! इसके सुनने से तेरा अज्ञान से पैदा हुआ मोह दूर हुआ या नहीं? मतलब यह कि तू बार-बार यह कहता था कि "मैं युद्ध न करूँगा, इसमें बड़ा भारी पाप लगेगा" सो यह अज्ञान दूर हुआ या नहीं? अब तू युद्ध करने को तैयार है या नहीं?

यह सुन अर्जुन ने कहा—हे महात्मन्, आपकी कृपा से मेरा

सब मोह दूर हो गया। अब मुझे चेत हो गया। मैं ज़रूर आपकी आज्ञा का पालन करने के लिए तैयार हूँ। जो आपने कहा है मैं वही करूँगा अर्थात् अब मैं युद्ध करने के लिए तैयार हूँ।

उपसंहार

बस, गीता की यहीं समाप्ति है। अठारह अध्यायों में इसका वर्णन है।

हमारे यहाँ संस्कृत-साहित्य में जितना मान, जितनी प्रतिष्ठा, और जितना गौरव "श्रीमद्भगवद्गीता" का है उतना और किसी ग्रन्थ का नहीं। कितने ही हिन्दू तो इसका नित्य पाठ करते हैं। और यह है भी इसी योग्य। हमारी राय में हर एक हिन्दू को गीता का नित्य पाठ करना चाहिए। परन्तु पाठ मात्र करने से कुछ लाभ नहीं। पाठ के साथ ही साथ उसके असली मतलब को समझते जाना चाहिए और मतलब समझकर उससे उचित शिक्षा भी ग्रहण करनी चाहिए। यह "विष्णु-सहस्रनाम" स्तोत्र नहीं है, कि जिसके पाठ मात्र से लोग भवसागर के पार उतर जायँ। यह गीता है, और, वह गीता है जिसमें उपनिषद्विद्या का सार कूट-कूट कर भरा गया है। यह भुक्ति और मुक्ति दोनों के प्राप्त करने का बढ़िया साधन है। जिस तरह कोई आदमी रात-दिन मिठाई का नाम रटने पर भी तब तक मिठाई के स्वाद को नहीं चख सकता जब तक वह उसे उठाकर अपने मुँह में नहीं रख लेता उसी तरह गीता को रात-दिन तोते की तरह रटने से किसी को उसका सच्चा फल नहीं मिल सकता। गीता के अनमोल उपदेशों से वही लोग लाभ

उठा सकते हैं जो उसे पढ़कर उसका असली मतलब समझते हैं और उसके शिक्षारूप पावन साबुन से अपने अज्ञानरूपी भीतरी मल को साफ़ कर डालते हैं।

गीता बड़े महत्व की पुस्तक है। इसकी यथेष्ट प्रशंसा करने में हम असमर्थ हैं। उसके प्रभावशाली और परोपकारी उपदेशों पर स्वदेशी ही नहीं, परदेशी विद्वान् भी मोहित हो गये हैं। सच पूछिए तो परदेशी विद्वानों के हृदयस्थल पर जितना गौरव हमारी गीता ने जमाया है उतना और किसी ग्रन्थ ने आज तक नहीं जमाया। आज हम अपने पाठकों को थोड़े में यह दिखलाना चाहते हैं कि गीता में ऐसे कौनसे गुण हैं जिनके कारण अत्र, तत्र, सर्वत्र इसका इतना गौरव है।

गीता बड़े गौरव की चीज़ है। भला जिसमें महायोगीश्वर श्रीकृष्ण भगवान् के अमृतमय उपदेश भरे हों वह हमारे लिए क्यों न गौरव की चीज़ हो? पर इसका जितना गौरव होना चाहिए था उतना हमसे हो नहीं सका। गीता को बने आज कोई पाँच हज़ार वर्ष हो गये, पर उससे यथार्थ शिक्षा हमने आज तक नहीं ली। यह हमारे लिए कम लज्जा की बात नहीं है। संसारी सङ्कटों से पार पाने के लिए और संसारी सुखों को भोगने के पश्चात् मोक्ष पदवी पाने के लिए, गीता में जगह-जगह उपदेश भरे पड़े हैं; पर आज तक हम लोगों में से अधिकांश ने उनकी ओर आँख उठाकर भी नहीं देखा। उनके समझने और समझकर वैसा ही बर्ताव करने की तो बात ही क्या!

गीता के एक-एक श्लोक में, एक-एक चरण में और एक-एक

पद में ऐसा अनुपम उपदेश भरा हुआ है कि जिसके सुनने, समझने और अनुष्ठान करने से मनुष्य अमर-पदवी को प्राप्त हो सकता है। गीता का एक-एक पद ऐसी-ऐसी दिव्यौषधियों के रस से भरपूर हो रहा है कि जिसके सेवन से नामर्द भी मर्द बन सकता है और मुर्दा जिन्दा हो सकता है। गीता की एक एक धारा ब्रह्मज्ञानामृत से ऐसी लबालब भरी हुई है कि जिसके श्रवण, मनन से मनुष्य सांसारिक महाजालों को छिन्न-भिन्न करके और मोक्षप्राप्ति में बाधा पहुँचानेवाले काम, क्रोध, लोभ और मोह आदि प्रबल शत्रुओं के मस्तक पर पाँव रखकर, परमानन्दमय पद को प्राप्त हो जाते हैं।

नामर्द को मर्द बनाने, मुर्दे को जिन्दा करने और अज्ञानी मनुष्य को ब्रह्मज्ञान-द्वारा परात्पर और सर्वोच्च पदवी का अधिकारी बनाने के लिए "महाभारत"-रूपी पर्वत से यह गीता नाम की अद्भुत नदी भारतवर्ष में प्रकट हुई है। अद्भुत हम इसे इसलिए कहते हैं कि और नदियों की नाईं यह पश्चिम से पूर्व को या पूर्व से पश्चिम को—एक ही ओर को—नहीं बहती। यह चारों ओर को बहती है। इसका कहीं अभाव नहीं। यह सदा सब जगह बहती रहती है। यह बड़ी पवित्र नदी है। इसमें बड़ी अद्भुत शक्ति है।

तीनों तापों से तपाये हुए मनुष्यों को इस पवित्र और शीतल जलपूर्ण नदी में स्नान करके अपनी गर्मी शान्त करनी चाहिए। इस नदी में शरीर से जल-स्पर्श होते ही, डुबकी लगाते ही, मनुष्य अपने पापों का प्रायश्चित्त करके विशुद्ध हो जाता है।

गीता कीं मूल रचना कब हुई, क्यों हुई ? इत्यादि बातें जानने के लिए, प्रसङ्गानुसार, दो-चार बातें हम यहाँ लिखते हैं। सुनिए—

जिस समय कौरवों ने छल करके जुए में पाण्डवों का सर्वस्व हरण कर लिया उस समय हारे हुए पाँचों पाण्डवों को द्रौपदी सहित बारह वर्ष वनवास भोगने और एक वर्ष तक अज्ञात रह कर दिन काटने के लिए जाना पड़ा। अपने आपत्काल के तेरहों वर्ष बिताकर पाण्डवों ने आकर जब कौरवों से अपना राजपाट माँगा तब अन्यायी कौरवों ने उन्हें उनका राजपाट लौटाने से साफ़ इन्कार कर दिया।

लालच बुरी बला है। इसमें फँसकर आदमी अन्धा हो जाता है। लालची को धर्म-अधर्म का कुछ भी ख़याल नहीं रहा करता। न्याय तो उसकी सूरत देखकर कोसों दूर भाग जाता है। अन्याय से किसी का हक़ दबा लेने में लालची लोग ज़रा भी नहीं हिचकते। यही हाल उस समय कौरवों का हुआ। क्योंकि राजपाट का लालच बहुत बड़ा लालच है। इससे बढ़कर लालच दुनिया में और कोई है ही नहीं। कौरवों ने राज के लालच में आकर पाण्डवों को सूखा जवाब दे दिया। बेचारे पाण्डव इस तरह टका सा जवाब पाकर बड़े दुखी हुए।

राजपाट हो चाहे और छोटी-सी चीज़ हो, पर जो अन्याय से ली गई हो वह बहुत दिन तक किसी के पास नहीं रहा करती। अन्याय से, अधर्म से, चोरी से, छल से, फुसलाने से या ज़बर्दस्ती किसी का माल हड़प जानेवाला अन्यायी मनुष्य, फिर चाहे वह

कितना ही बलवान् क्यों न हो, कभी सुखी नहीं रह सकता। ऐसे अन्यायी का एक न एक दिन ज़रूर नाश होता है। ऐसे अन्यायी पर ईश्वर का भारी कोप पड़ता है। और उस कोपाग्नि से उस अन्यायी की जड़ तक ऐसी भस्म हो जाती है कि उसका कहीं नाम-निशान भी नहीं रहता। ईश्वर का यह नियम अटल और अमिट है। इसके मिटाने की शक्ति संसार के किसी मनुष्य में नहीं है। अस्तु, कौरवों के पास भी अन्याय से दबाया हुआ राज अधिक काल तक नहीं ठहरा।

यद्यपि पाण्डव बल-पराक्रम में कौरवों से कम न थे तथापि उनका स्वभाव शान्त था। वे चाहते थे कि समझाने-बुझाने और आरज़ू-मिन्नत करने से ही काम बन जाय तो अच्छा। पर अन्यायी कौरवों की कुबुद्धि ने ऐसा नहीं होने दिया। दुष्ट मन्त्रियों की कु-मन्त्रणाओं से प्रेरित होकर दुरात्मा दुर्योधन ने पाण्डवों की न्याय-सङ्गत और धर्मानुकूल बात पर तनिक भी ध्यान नहीं दिया और बार-बार यही कहता रहा कि, "यदि तुम्हारी भुजाओं में शक्ति हो तो युद्ध करके अपना राज भले ही ले लो, पर जीते जी तो मैं तुम्हें सुई की नोक के बराबर भी भूमि नहीं दूँगा।" "अच्छा बचा मत दे! अब तू हमारी भुजाओं की ताक़त देख! हम भी क्षत्रिय होंगे तो तुझको युद्ध में जीतकर अपना राज्य ले लेंगे।" यह कहकर पाण्डवों ने युद्ध के लिए बड़ी भारी तैयारी की। दोनों ओर से युद्ध की तैयारियाँ होने लगीं। कुरुक्षेत्र की कड़ी भूमि में कौरव-पाण्डवों की सेनायें जा डटीं।

जिस समय दोनों ओर की सेनाओं ने मोर्चेबन्दी से खड़े

होकर लड़ाई का बिगुल बजाया उस समय अर्जुन ने भी वीर-वेष से सुसज्जित होकर सफ़ेद घोड़ों के रथ में बैठकर शङ्ख बजाया। उस समय उनके घोड़े हाँकने का काम श्रीकृष्ण कर रहे थे। अर्जुन के कहने से श्रीकृष्ण ने उनका रथ दोनों सेनाओं के बीच में लाकर खड़ा कर दिया। कहाँ तो अर्जुन अपने साथ लड़ने के लिए किसी वीर की तलाश में गये थे और कहाँ भीष्म पितामह और अपने गुरु द्रोणाचार्य आदि को देखकर लड़ाई-बड़ाई सब भूल गये। अपने भाई-बन्दों को देखकर करुणा से अर्जुन का हृदय ऐसा भर आया कि उनका सारा वीर-रस छू-मन्तर हो गया। उनका सारा शरीर काँपने लगा; मन डाँवाडोल हो गया; और गाण्डीव धनुष अपने आप हाथ से छुटकर नीचे गिर पड़ा।

अर्जुन की ऐसी विचित्र दशा देखकर श्रीकृष्ण ने कहा कि हैंय! अर्जुन! यह क्या? तुम्हारे चेहरे का रङ्ग क्यों बदला जाता है? तुम्हारे चेहरे से वीर-रस एकदम कहाँ जा रहा है?

यह सुनकर अर्जुन ने कहा—मित्र! अब मैं युद्ध नहीं करूँगा। हाय! मैं पूज्य पितामह भीष्मजी और गुरु द्रोणाचार्य आदि श्रद्धेय गुरुजनों के साथ युद्ध करने के लिए तैयार हो गया! मुझे धिक्कार है। हे कृष्ण! मैं इन भाई-बन्दों को मारकर भला कैसे सुखी रह सकूँगा? हाय! क्या इन्हें मैं अपने ही हाथ से मारूँ? नहीं, कभी नहीं। मुझसे यह घोर पाप कभी न होगा। मैं इन्हें मार कर त्रिलोकी का राज्य भी नहीं चाहता। बस कीजिए, अब मेरा रथ संग्राम-भूमि से बाहर ले चलिए। अब तो ये कौरव मुझे मार डालें तो भी मैं इन पर हाथ न उठाऊँगा।

जब कृपणता या दया से अर्जुन ने युद्ध करने से हाथ खींच लिया, और हाथ पर हाथ रखकर रथ में पीछे हटकर जा बैठे तब श्रीकृष्णजी ने अर्जुन को उपदेश देना शुरू किया। उसी उपदेश का नाम गीता है। वह उपदेश बड़ा गम्भीर और वेदान्त का सार है। उन्होंने ऐसा जोशीला और प्रभावशाली उपदेश किया, ऐसी मार्मिक बातें कहीं और मरने-जीने का जीवात्मा पर कुछ प्रभाव न पड़ने के विषय में ऐसी-ऐसी शास्त्र-सम्मत बातें कहीं जिनके सुनते ही अर्जुन का सारा अज्ञान दूर हो गया। उसे सुनते ही अर्जुन की सारी कृपणता जाती रही और सारी दीनता न जाने कहाँ हवा हो गई। वे फिर युद्ध करने के लिए कमर कस कर तैयार हो गये। ऐसी अद्भुत शक्ति रखने के कारण ही गीता का इतना गौरव है।

मतलब यह कि दोनों ओर से बड़ी घमासान लड़ाई हुई। ऐसा घोर युद्ध हुआ कि दोनों ओर के हज़ारों-लाखों महारथी वीर समराङ्गण में प्राण त्यागकर वीरोचित गति (स्वर्ग) को प्राप्त हुए। दोनों पक्षों की बाँसियों अक्षौहिणी सेनायें थीं, पर किसी में एक पंछी तक जीता नहीं बचा। बचे सिर्फ़ नव आदमी—पाँच पाण्डव, श्रीकृष्ण और तीन और (कृतवर्मा, द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा और कृपाचार्य)। बाक़ी सब वहीं ढेर हो गये।

धन्य है धर्मसंस्थापक श्रीकृष्ण भगवान् को, धन्य है उनके अनन्य शिष्य और परमभक्त अर्जुन को, धन्य है गीता के निर्माण करनेवाले लोकोपकारी वेदव्यास को, और उन्हें भी धन्य है जो गीता को पढ़कर समझते और उसकी पवित्र शिक्षा से अपने आत्मा

को परिमार्जित करके शुद्ध सच्चिदानन्द में लीन हो जाते हैं। गीता से अनेक शिक्षाएँ मिलती हैं। जो उसमें जितनी ही गहरी डुबकी लगाता है उसे उतनी ही गहरी शिक्षा भी प्राप्त होती है।

'बालगीता' लिखने का हमारा यही मतलब है कि इसकी बातों को ऐसी सीधी भाषा में खोलकर लिखा जाय कि जिसे थोड़े पढ़े-लिखे लोग भी समझ सकें।

गीता के अठारहों अध्यायों में से हमने सिलसिले-वार सब अध्यायों की सीधी-सीधी बातों का सार निचोड़ कर लिखा है।

जिनको ज्यादा पढ़ने का समय न हो उनके लिए हम हर एक अध्याय की कथा थोड़े में लिख देते हैं, सुनिए।

पहला अध्याय—हमारी राय में इस सारी गीता और सब अध्यायों से पहला अध्याय बहुत बढ़िया है। बढ़िया हम इसे इसलिए ही नहीं कहते कि यह गीता की जड़ है, बल्कि इसमें बढ़ियापन की और भी कई बातें हैं। इस अध्याय से हमें बहुत सी बातों की शिक्षायें मिलती हैं। उनमें से दो एक ये हैं—

१—इसमें सबसे पहली बात तो शिक्षा की यही है कि क्रोध में लोगों को अन्धा नहीं हो जाना चाहिए। क्रोध बड़ी बुरी बला है। जब किसी को क्रोध आ जाता है तब उसे अपने-पराये का कुछ भी ख़याल नहीं रहता। क्रोध में मनुष्य क्या नहीं कर सकता? क्रोध में आदमी ऐसा अन्धा हो जाता है कि उसे कुछ भी दिखाई नहीं दिया करता। क्रोध में ज्ञान नष्ट हो जाता है, बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है और करने न करने का कुछ भी ध्यान नहीं रहता। पहले तो क्रोध को आने ही न देना चाहिए। और

यदि आ जाय तो उसे बढ़ने न देना चाहिए। और यदि बढ़ भी जाय तो उस समय धीरज करके उसे रोक लेना चाहिए। पर बढ़े हुए क्रोध का रोकना आसान नहीं। बड़ा मुश्किल है। क्रोध भी एक तरह की आग है। जिस तरह बढ़ी हुई आग के बुझाने में बड़ी भारी दिक्कत उठानी पड़ती है इसी तरह बढ़े हुए क्रोध को शान्त करना बड़ा ही कठिन है। पर कोई-कोई बढ़े हुए क्रोध को भी दबा जाते हैं। देखो, अर्जुन कैसे बढ़े हुए क्रोध को दबा गया। उसका कितना बड़ा हुआ क्रोध कैसा जल्द शान्त हो गया। बालको! तुम जानते हो, अर्जुन ने अपना बढ़ा हुआ क्रोध कैसे दबा लिया? बात यह कि अर्जुन ने अपना मन अपने वश में कर रक्खा था। मन वश में हो जाने पर सब इन्द्रियाँ वश में हो जाती हैं। मन इन्द्रियों का राजा है। जब राजा ही जीता गया तब बेचारी इन्द्रियाँ कहाँ रहीं? सो मन को तो अर्जुन ने जीत ही रक्खा था, बढ़े हुए क्रोध को भी उसने रोक लिया। बात यह कि हर एक काम के करने में मन ही मुखिया होता है। मन के बिना कोई काम नहीं हो सकता। मन न चाहे तो हाथ, पाँव, आँख, कान कोई भी इन्द्रिय अपना काम न कर सके। जिस समय क्रोध खूब भर रहा था उस समय अर्जुन ने अपने मन को रोक लिया। मन के ठीक होने पर क्रोध अपने आप शान्त हो गया। इसलिए बालको! जब कभी तुमको क्रोध आया करे तभी तुम धीरज धरकर अपने मन को रोक लिया करो। इसी तरह करते-करते तुम बड़े भारी क्रोध को भी रोकने में समर्थ हो जाओगे। क्रोध पाप का मूल है। इसके दूर हो जाने पर सुख ही सुख है।

२—दूसरी बात यह है कि सब काम आगा-पीछा सोचकर करने चाहिएँ। जो लोग ऐसा नहीं करते उन्हें अन्त में पछताना पड़ता है। जो लोग सोच-विचार कर काम करते हैं वे सदा सुखी रहते हैं। जब अर्जुन लड़ाई के लिए तैयार हो कर दोनों फ़ौजों के बीच में गया तब वहाँ अपने भाई-बन्दों को देखकर वह लड़ने से हट गया। वह इस सोच में पड़ गया कि इनके साथ लड़ाई करनी चाहिए या नहीं। उसने श्रीकृष्ण से सलाह ली। उन्होंने भी उसे सलाह दी और समझाया। उन्होंने उस समय लड़ना ही अच्छा बताया। उनकी सलाह से अर्जुन ने ख़ूब सोच-समझकर लड़ाई की। बालको! तुम भी जो काम किया करो उसे ख़ूब सोच-समझकर और बड़े बूढ़ों से सलाह लेकर किया करो। सोच-समझकर और किसी चतुर आदमी की सलाह से जो काम करोगे वह अच्छा ही होगा। क्योंकि ऐसा करने पर भी अगर तुमसे कोई काम बिगड़ जायगा तो लोग तुम्हें दोष न देंगे।

दूसरा अध्याय—इसमें श्रीकृष्ण ने अर्जुन को ख़ूब समझाया है। उन्होंने समझाया है कि यह जीव न तो किसी को मारता और न यह किसी से मारा जाता है। यह नित्य है। यह न कभी मरता और न पैदा होता है। शरीर के मारे जाने पर यह नहीं मरता। यह शरीर से बिलकुल अलग है। एक शरीर के छूट जाने पर यह झट दूसरे शरीर में चला जाता है। दूसरी बात यह कि अपने धर्म-कर्म के करने के लिए सबको सदा तैयार रहना चाहिए। क्षत्रियों का धर्म दुष्टों को मारना है। क्योंकि दुष्टों के बिना मारे देश में शान्ति नहीं होती। इसलिए श्रीकृष्ण ने अर्जुन को समझाया और

समझाया है कि हे अर्जुन ! तू अपने धर्म का पालन कर अर्थात् युद्ध कर । धर्म-युद्ध करना क्षत्रियों का बड़ा भारी धर्म है । जहाँ धर्म दबाया जाता हो और अधर्म बढ़ाया जाता हो वहाँ क्षत्रिय को अपना पराक्रम ज़रूर दिखाना चाहिए । बिना ऐसा किये धर्म की रक्षा नहीं होती । जो अधर्मी हो, लोभ में आकर दूसरे का हक़ दबा बैठे, और किसी के समझाने पर भी दूसरे का हक़ उसे न दे तो श्रीकृष्ण की राय है कि उसे लड़ाई में मार डालना चाहिए । उसे मार डालने के सिवा और दूसरा कोई उपाय नहीं । इसलिए बालको ! तुम भी अपने धर्म में मज़बूत रहो । बिना अपराध किसी को मत सताओ पर अपने धर्म की रक्षा के लिए तुम अपने प्राणों की कुछ परवा मत करो । धर्म के लिए मरने-जीने का कुछ दुःख-सुख नहीं मानना चाहिए । जो पैदा हुआ है वह किसी न किसी दिन मरेगा ज़रूर । यही सोचकर हर एक आदमी को अपने धर्म की अच्छी तरह रक्षा करनी चाहिए । धर्म के लिए प्राण भी जाते हों तो भी कुछ चिन्ता नहीं ।

तीसरा अध्याय—इसमें कर्म और ज्ञानयोग की बातों का वर्णन है । दूसरे अध्याय में श्रीकृष्ण ने कर्म की अपेक्षा ज्ञान को अच्छा बतलाया था । इस पर अर्जुन ने पूछा कि आप कर्म करने से ज्ञान को अच्छा बताते हैं तब मुझे क्यों इस युद्ध-कर्म में लगाने की कोशिश कर रहे हैं ? इस पर श्रीकृष्ण ने अर्जुन को कर्म करने और छोड़ने की बातों का मर्म ख़ूब समझाया है । उन्होंने कहा है कि बिना काम किये कोई प्राणी रह नहीं सकता । कामों का छोड़ना इसे नहीं कहते कि हाथ पर हाथ रखकर

बैठ जाय; किन्तु काम को छोड़ना वही कहलाता है कि काम करता तो रहे पर कामों के फलों में और इन्द्रियों के विषय में फँस न जाय। विषयों में अधिक न फँसना ही कर्मों का छोड़ना कहलाता है। जो लोग वैसे तो कुछ काम करते नहीं और मन से विषयों का ध्यान करते रहते हैं वे दम्भी हैं, छली हैं। जनक आदि महापुरुषों का दृष्टान्त देकर श्रीकृष्ण ने अर्जुन को समझाया है कि कर्म से ही लोगों को परमपद मिला है। कर्मों का छोड़ना ठीक नहीं। मतलब यह निकला कि कर्मों के न करने और उनके विषयों में मन के फँस जाने से, कर्मों का करना और उनमें न फँसना अच्छा है।

चौथा अध्याय—इसमें ज्ञान की महिमा गाई गई है। इसके पढ़ने से मालूम होता है कि ज्ञान बड़ी चीज़ है। पर वह मिलता बड़ी कठिनता से है। ज्ञानी पुरुष को कर्म नहीं बाँधते। क्योंकि वह उनमें फँसता नहीं। वह जानता है कि विषयों का बन्धन तभी असर करता है जब उनमें लोग ख़ूब फँस जाते हैं। इसलिए जो पुरुष मोक्ष की इच्छा करते हों और चाहते हों कि हम कर्मों की फाँसी से छुटकारा पा जायँ, उन्हें चाहिए कि वे ज्ञान बढ़ाकर कर्म के बन्धनों को भस्म कर दें। ज्ञानरूपी अग्नि से कामरूपी इन्धन भस्म हो जाता है।

पाँचवाँ अध्याय—इस अध्याय में बतलाया गया है कि कर्म के न करने से करना अच्छा है। कर्म के न करने को संन्यास कहते हैं और करने को कर्मयोग। इन्हीं दोनों बातों का इस अध्याय में ज़्यादा वर्णन है। आगे चलकर इन दोनों को एक कर दिया है।

अर्थात् संन्यास और कर्मयोग में कुछ भेद नहीं; क्योंकि योग अर्थात् कर्म बिना किये संन्यास नहीं मिल सकता। कर्मयोग से बहुत जल्द संन्यासी हो जाता है। फिर वह बहुत जल्द मोक्ष को पा सकता है। योगी लोग इन्द्रियों से काम तो करते रहते हैं पर उनमें आसक्त नहीं होते। इसलिए वे बन्धन में नहीं पड़ते। कर्मबन्धन का उन पर कुछ असर नहीं होता। जब योगी का मन ही विषयों से दूर भागता है तब कर्म उस पर क्या असर डाल सकते हैं? कुछ नहीं। जो लोग संसार की सब चीज़ों को बराबर देखते हैं, सबको एक सा समझते हैं वे ज्ञानी कहलाते हैं। ऐसा ज्ञानी संसार को जीतनेवाला कहा जाता है।

छठा अध्याय—इसमें ध्यानयोग का वर्णन है। इसमें कहा गया है कि जो योगी ज़्यादा भोजन करता है या बिलकुल नहीं करता, और जो बहुत ज़्यादा सोता है या बिलकुल नहीं सोता, उसको योग की सिद्धि नहीं मिलती। मतलब यह कि जो ठीक तरह पर भोजन करता और सोता है और योग-रीति से सब काम करता है उसका योग दुःख दूर करनेवाला होता है अर्थात् उसका योग सिद्ध हो जाता है। योग वही है जिसमें मन की चञ्चलता रुक जाय, मन एक जगह ठहर जाय और आत्मा को शान्ति प्राप्त हो। मन के रोकने का नाम योग है। इसलिए यह चञ्चल मन जहाँ-जहाँ जाय, जिस-जिस विषय की ओर दौड़े वहाँ-वहाँ से उसे रोकना चाहिए। ऐसा अभ्यास करने से मन की चञ्चलता दूर हो जाती है। फिर वह अपने वश में हो जाता है। मन में जो यह चञ्चलता है उसे एक तरह का विष समझना

चाहिए। उसका विष झाड़ना काला नाग खेलाने से भी ज़्यादा कठिन है। चञ्चलता दूर होते ही मन निर्विष हो जाता है। फिर यह इन्द्रियों के बहकाने में असमर्थ हो जाता है। जब मन ठीक हो जाता है तब इन्द्रियाँ भी ठीक हो जाती हैं। यह मन है तो बड़ा चञ्चल, पर इसकी चञ्चलता अभ्यास और वैराग्य से दूर हो जाती है। मन के बिना योग किसी काम का नहीं। यदि योगी का योग अच्छी तरह से सिद्ध न हो और वह योग करता ही करता मर जाय तो वह मर कर भी या तो योगियों के घर जन्म लेता है और फिर योग का अभ्यास बढ़ाता है और इसी तरह करता-करता सिद्ध को पा लेता है; नहीं तो वह किसी धनी के यहाँ जन्म लेता है। मतलब यह कि धनी होना भी बड़े पुण्य की बात है।

सातवाँ अध्याय—इसमें प्रकृति, पुरुष और परमपुरुष इन तीन बातों का वर्णन है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार यह आठ तरह की प्रकृति है। जीवात्मा को पुरुष कहते हैं और परमात्मा को परमपुरुष। यह ईश्वर ही सारे संसार को प्रकृति के द्वारा रचता है। परमात्मा करता सब कुछ है, पर है सबसे अलग। वह सर्वव्यापक है। कोई जगह ऐसी नहीं जहाँ परमात्मा न हो। संसार की सब चीज़ों में जो-जो चीज़ अधिक अच्छी, अधिक तेजस्वी और अधिक मनोहर मालूम होती है, उसमें परमात्मा का विशेष अंश समझना चाहिए। भक्त चार तरह के होते हैं। आर्त्त, जिज्ञासु, धनार्थी और ज्ञानी। आपत्काल में ईश्वर को याद करनेवाला आर्त्त कहलाता है।

जिज्ञासु वह है जिसे ईश्वर के जानने की इच्छा हो। बहुत से लोग ईश्वर में मन लगा कर धन चाहते हैं। वे धनार्थी हैं। चौथा भक्त ज्ञानी है। इन चारों में ज्ञानी भक्त ही उत्तम है। इसमें बतलाया गया है कि जो लोग अनादि और नित्य परमात्मा को जन्म लेने-वाला मानते हैं वे मूर्ख हैं। परमात्मा कभी जन्म नहीं लेता। ईश्वर सब चीज़ों को देखता है। पर उसे कोई नहीं देखता। इच्छा और द्वेष से प्राणी बन्धन में पड़ जाते हैं। सुख-दुख ही मनुष्य को बन्धन में डालते हैं। पर जिनके पाप दूर हो जाते हैं वे सुख-दुख को दूर कर केवल ईश्वर की भक्ति करते हैं।

आठवाँ अध्याय—इसमें लिखा है कि मरते समय प्राणी जिसमें मन लगाता है वही हो जाता है। अर्थात् इसमें "अन्त मता सो गता" की कहावत सिद्ध की गई है। मरते समय प्राणी की बुद्धि सावधान नहीं रहा करती। बीमारी के कारण अन्तकाल में प्राणी को बड़ा कष्ट उठाना पड़ता है। उस कष्ट के मारे वह सारी सुध-बुध भूल जाता है। उस समय वह नहीं मालूम क्या-क्या सोचा करता है। किसी का मन स्त्री में होता है, किसी का बेटे में। किसी का धन में होता है और किसी का किसी चीज़ में। पर जो भक्त जन हैं, योगी हैं, ज्ञानी हैं और मन के जीतनेवाले हैं वे संसारी चीज़ों को याद नहीं किया करते। उनका मन स्त्री, बेटे और कुटुम्बी लोगों की ओर नहीं जाता। वे मरते समय न धन में मन लगाते हैं न घर में। मरते समय वे ईश्वर को ही याद किया करते हैं। सब चीज़ों से मन को हटाकर उस समय वे भगवान् को ही याद किया करते हैं। इसलिए वे मरकर भी अच्छी गति

पाते हैं। पर जो संसारी चीज़ों में मन लगाते हैं वे मरकर वही वनते हैं जिसमें मन लगाते हैं। इसलिए मनुष्य को अन्त-काल में, बुद्धि के सावधान रहने और मन को ठीक-ठीक काम करने के लिए वश में रखने और ईश्वर को याद करने के लिए वालकपन से ही ज्ञान की वातें सीखनी चाहिएँ; उन्हें पहले से ही ईश्वर की भक्ति करने का अभ्यास करना चाहिए। ऐसा न करने से अन्तकाल में ईश्वर याद नहीं आ सकता। इसलिए सबको वालकपन से ही ईश्वर में प्रेम लगाना चाहिए।

नवां अध्याय—इसमें वतलाया गया है कि ईश्वर ही सारे संसार को रचता है, पालन करता है और संहार करता है। ईश्वर जगत् का पिता, माता, धारण करनेवाला है। वही जानने के योग्य है। वही पवित्र और ओंकार है। वही सवका संहार है। वही सवका देखनेवाला गवाह है। वही सवका रक्षक, सुहृद और आधार है। सूर्य्य में उसी का तेज है। चन्द्रमा में उसी की चमक है। वही पानी वरसाता है। वही अमर है और वही मृत्यु है। ईश्वर के लिए सब प्राणी वरावर हैं। उसका न कोई मित्र है न शत्रु। पर जो लोग गाढ़ी भक्ति से ईश्वर को भजते हैं वे ईश्वर के हो जाते हैं और ईश्वर उनका। कोई किसी जाति का क्यों न हो—स्त्री हो या पुरुष, वालक हो या वूढ़ा—जो ईश्वर में मन लगावेगा, जो उसकी भक्ति करेगा, वही उत्तम गति पावेगा।

दसवां अध्याय—इसमें कहा गया है कि जो लोग ईश्वर को अजन्मा, अनादि और सारे लोकों का स्वामी जानते हैं वे ईश्वर में भक्ति करके परमपद को पाते हैं। वे सब पापों से छूट जाते

हैं। बुद्धि, ज्ञान, सुख, दुःख आदि जो कुछ और बातें प्राणियों में दिखाई देती हैं वे सब ईश्वर से ही उनको मिलती हैं। इस अध्याय में बतलाया गया है कि जो लोग इन्द्रियों को जीतकर ईश्वर में मन लगाकर उनकी भक्ति करते हैं उनको वे ऐसी बुद्धि दे देते हैं कि जिससे उनको मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है। क्योंकि ईश्वर सबके हृदय में वास करते हैं। इसलिए अपने भक्त पर दया करके वे ज्ञान का प्रकाश करके अज्ञानरूपी अन्धकार का नाश कर देते हैं। फिर आगे चलकर इस अध्याय में श्रीकृष्णचन्द्र ने भगवान् की विभूतियों का संक्षेप से वर्णन किया है। विभूति-वर्णन ही इस अध्याय का मुख्य विषय है।

ग्यारहवाँ अध्याय—इसमें भगवान् के विराट् स्वरूप का और अर्जुन-कृत भगवान् की स्तुति का वर्णन है। आगे चलकर श्रीकृष्ण ने अर्जुन को समझाया है कि इस सारे संसार को पैदा करने और मारनेवाला एक ईश्वर ही है। ईश्वर ही काल है। यह कहकर उन्होंने अर्जुन को युद्ध करने के लिए बहुत कुछ उभारा है।

बारहवाँ अध्याय—इसमें ईश्वर के सगुण और निर्गुण रूप के उपासकों का फल कथन किया गया है। इसमें बतलाया है कि अभ्यास से ज्ञान, ज्ञान से ध्यान, और ध्यान से कर्मफल का त्याग, अच्छा है। क्योंकि त्याग से जल्द शान्ति मिल जाती है। इसमें ईश्वर के प्यारे भक्तों के लक्षण बतलाये गये हैं।

तेरहवाँ अध्याय—इसमें शुरू ही में क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का वर्णन किया गया है। और, आगे चलकर लिखा है कि ईश्वर के चारों ओर हाथ हैं चारों ओर पाँव हैं, और आँख, सिर, मुँह, और कान

भी चारों ओर हैं। मतलब यह है कि ईश्वर सब जगह मौजूद है। यह सब इन्द्रियों का प्रकाशस्थान होकर भी इन्द्रियों से हीन है। वह सङ्गरहित, अकेला है और सारे जगत् को धारण करता है। वह सूर्य, चन्द्रमा और और जितनी चमकीली चीज़ें हैं उन सबको चमकानेवाला है। अर्थात् सूर्य आदि में जो प्रकाश है वह उसी परमात्मा का दिया हुआ है। जो परमेश्वर को सारे प्राणियों में व्यापक समझता है और उन प्राणियों के नष्ट हो जाने पर भी ईश्वर को नष्ट नहीं समझता, वही पूरा ज्ञानी है।

चौदहवां अध्याय—इसमें प्रकृति के सत्व, रज, तम, इन तीनों गुणों का ख़ूब वर्णन किया गया है। कहा गया है कि सत्वगुण से ज्ञान और सुख मिलता है। रजोगुण से न मिली हुई चीज़ की इच्छा, और मिली हुई चीज़ में अधिक आसक्ति--प्रीति—पैदा होती है। और तमोगुण से अज्ञान, आलस्य और प्रमाद आदि बुराइयाँ पैदा होती हैं। इन्हीं बातों को आगे चलकर और साफ़ करके बतलाया है कि सत्वगुण से सुख, रजोगुण से कर्मों की प्रवृत्ति और तमोगुण से ज्ञान का नाश और आलस्य तथा प्रमाद पैदा होता है। सत्वगुण के बढ़ने पर मनुष्य ज्ञान की बातें बहुत सोचा-विचारा करता है और रजोगुण के बढ़ जाने पर लोभ, तरह-तरह के कामों का करना, अशान्ति और तृष्णा बहुत बढ़ जाती है। और जब तमोगुण बहुत बढ़ जाता है तब मनुष्य का ज्ञान नष्ट हो जाता है, उद्योग दूर होकर आलस बहुत बढ़ जाता है। करने योग्य काम में भूल और मोह बहुत बढ़ जाता है। सत्वगुण के बढ़ने की हालत में, मरने पर, अच्छे मनुष्यों में जन्म

लेता है। रजोगुण के बढ़ने की हालत में मरने से मनुष्य ऐसी जगह जन्म लेता है जहाँ बहुत से काम करने पड़ें। और तमोगुण की हालत में मरने से पशु आदि ज्ञानहीन योनियों में जन्म लेता है। मतलब यह कि सत्त्व का फल सुख, रज का दुःख, और तम का अज्ञान है। इसी को चाहे इस तरह समझिए कि सत्त्वगुण से ज्ञान, रजोगुण से लोभ और तमोगुण से क्रोध, मोह और अज्ञान पैदा होते हैं। आगे चलकर बतलाया है कि इन तीनों गुणों के बिना जीते मुक्ति नहीं मिल सकती। इन तीनों गुणों को जीतनेवाले पुरुष के लक्षण बताते हुए लिखा है कि जो लोग सुख-दुख को एकसा समझते हैं, कभी विकार को नहीं प्राप्त होते, मिट्टी के ढेले, पत्थर और सोने को एकसा समझते हैं, प्रिय और अप्रिय चीज़ में एकसी बुद्धि रखते हैं; निन्दा और प्रशंसा में खेद और आनन्द नहीं मानते, ऐसे धीर पुरुष तीनों गुणों के जीतनेवाले कहे जाते हैं।

पन्द्रहवाँ अध्याय—इसमें इस संसार को वृक्षरूप से वर्णन किया है और कहा है कि इस वृक्ष की जड़ बड़ी मज़बूत है। इसे वैराग्यरूप शस्त्र से काटना चाहिए। आगे चलकर लिखा है कि कान, आँख, त्वचा, जीभ, नाक और मन, इन छहों इन्द्रियों के सहारे ही मनुष्य विषयों को भोगता है।

सोलहवाँ अध्याय—इसमें दैवी और आसुरी, अच्छी और बुरी, दो तरह की सम्पत्तियों का अच्छा वर्णन किया गया है। कहा है कि दैवी सम्पत्ति से मोक्ष और आसुरी से बन्धन होता है। यह सब कह-सुनकर श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा है कि हे अर्जुन!

तू कुछ सोच मत कर। क्योंकि तू दैवी सम्पत्ति भोगने के लिए अच्छे कुल में पैदा हुआ है। सुमार्ग पर चलनेवाले दैवी सम्पत्ति-वाले कहलाते हैं और कुमार्गगामी आसुरी सम्पत्तिवाले। वे (दैवी सम्पत्तिवाले) आस्तिक कहलाते हैं और दूसरे नास्तिक। आगे चलकर कहा गया है कि काम, क्रोध और लोभ, ये तीन नरक के द्वार हैं। इसलिए अपने शत्रुरूप इन तीनों दोषों को दूर करना चाहिए। जो लोग शास्त्र की रीति के विरुद्ध मनमाने काम किया करते हैं उन्हें सिद्धि की प्राप्ति नहीं होती।

सत्रहवां अध्याय—इसमें तीन तरह की श्रद्धा का वर्णन किया गया है। भोजन, यज्ञ, तप और दान भी तीन-तीन तरह के बतलाये गये हैं। ओ३म्, तत्, सत्, ये तीन नाम परब्रह्म परमात्मा के हैं। इनका माहात्म्य वर्णन किया है।

अठारहवां अध्याय—इसमें अर्जुन के पूछने पर श्रीकृष्ण ने संन्यास और त्याग का वर्णन किया है। त्याग का वर्णन करते हुए लिखा है कि यज्ञ, तप और दान, ये तीन काम कभी नहीं छोड़ने चाहिएँ। ये तीनों काम ज्ञानी पुरुष के मन को शुद्ध कर देते हैं। पर इन तीनों को भी, फल की इच्छा छोड़कर, करना चाहिए। जो लोग यह समझकर कर्मों को छोड़ते हैं कि कर्म बड़े दुख-दायी हैं और इनसे शरीर को क्लेश होता है—उन्हें त्याग का फल नहीं मिलता। इसमें बतलाया है कि कर्म नहीं छोड़ने चाहिएँ। कर्मों के छोड़ने से कुछ फ़ायदा नहीं, किन्तु कर्मों के फलों की इच्छा को छोड़ना चाहिए। त्यागी वही है जिसने कर्म-फलों का त्याग कर दिया। आगे चलकर ज्ञान, कर्म और कर्त्ता

भी तीन-तीन तरह के बतलाये हैं। फिर बुद्धि और धैर्य के भी तीन-तीन भेदों का अच्छा वर्णन किया गया है। फिर, तीन सुखों का वर्णन करके लिखा है कि त्रिलोकी में ऐसा कोई प्राणी नहीं जो प्रकृति के इन तीनों गुणों (सत्व, रज, तम) से बचा हो। आगे चलकर चारों वर्णों के धर्म-कर्मों का वर्णन करते हुए श्रीकृष्ण ने कहा है कि हे अर्जुन ! अपने धर्म के करने से ही ईश्वर प्रसन्न होते हैं। तू यह अभिमान मत कर कि मैं युद्ध नहीं करूँगा। प्रकृति तुमसे ज़बरदस्ती युद्ध करावेगी। तू किसी बात की चिन्ता मत कर। युद्ध करने से तुझे किसी तरह का पाप न लगेगा। तू युद्ध कर। यही तेरा धर्म है। इतना कहकर श्रीकृष्ण ने अर्जुन से पूछा कि मैंने इतना गीत गाया, इतना सिर खपाया, कह तो सही, तेरा मोह दूर हुआ या नहीं ? मेरे समझाने से तेरा सन्देह दूर हुआ या नहीं ? इस पर अर्जुन ने साफ़ कह दिया कि मेरा सन्देह जाता रहा। अब मैं आपकी कृपा से अपने कर्त्तव्य को समझ गया। अब मैं आपकी आज्ञा में हूँ। जो आपकी आज्ञा है मैं वही करूँगा।